विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष-१५ जून १९९६

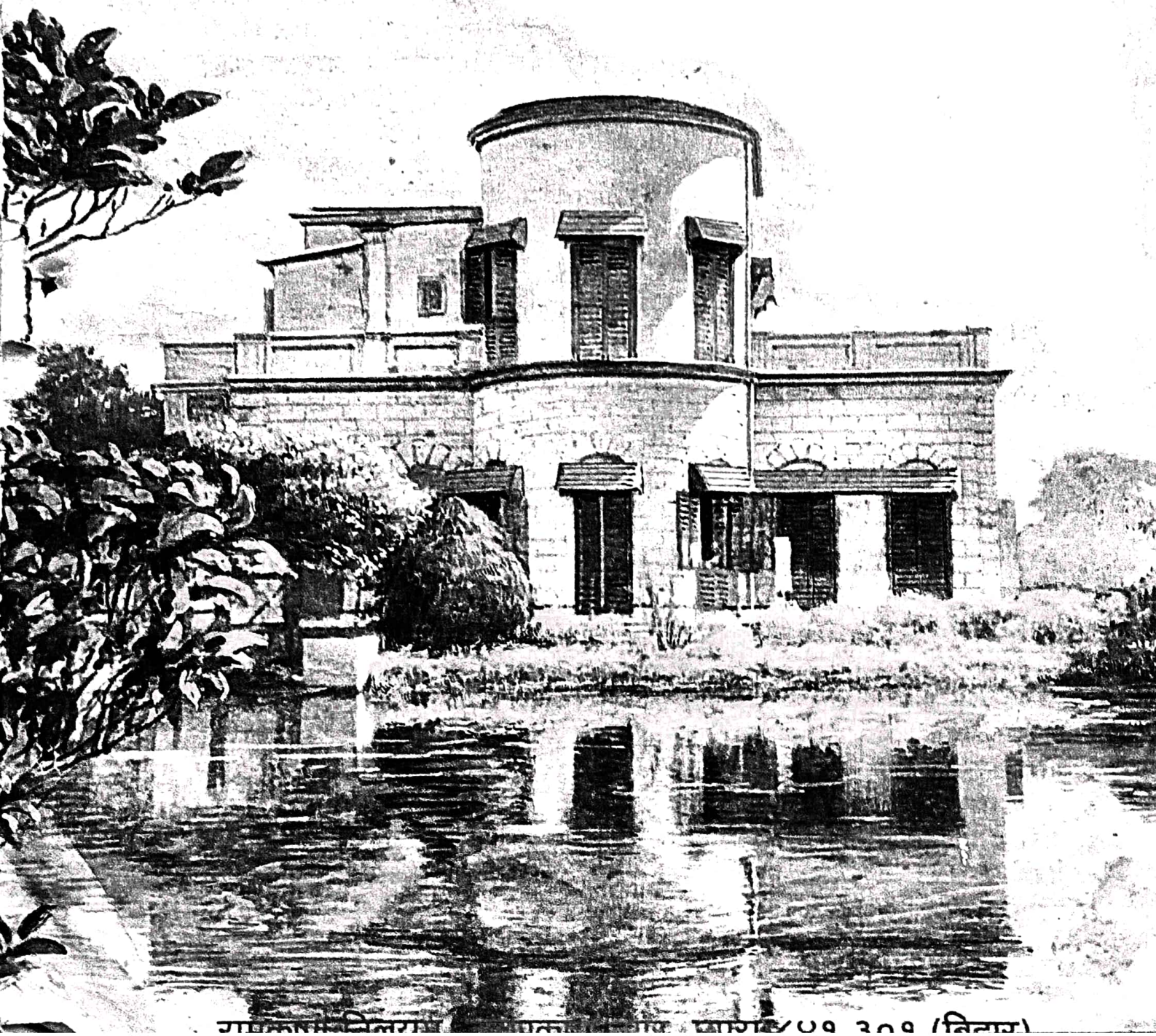

[illegible] (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१३१. श्री डी. के. दीक्षित, बरोदा (गुजरात)
१३२. श्री सत्य प्रकाश लाल, वाराणसी (उ. प्र.)
१३३. श्री पूनम चन्द्र जैन- लुमडिंग (आसाम)
१३४. श्री राम आसरा वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
१३५. नार्थ कछार टिम्बर प्रोडक्ट्स-मंडेरदिशा(आ.)
१३६. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल—लंका (आसाम)
१३७. श्री महेश गुरुवारा—लुमडिंग (आसाम)
१३८. श्री भोलानाथ उपाध्याय—लुमडिंग (आसाम)
१३९. श्री अमुभाई पटेल—बड़ौदा (गुजरात)
१४०. श्री रामभगत खेमका—मद्रास
१४१. श्री रूपाराम—जोधपुर (राजस्थान)
१४२, महावीर वाल वाचनालय-चन्दावलनगर(राज.)
१४३. श्री कृष्ण मलहोत्रा—नई दिल्ली
१४४. श्री गुलशन चावला—दिल्ली
१४५. श्री आर० के० ग्रोवर—नई दिल्ली
१४६. श्री राकेश रेल्हन—नई दिल्ली
१४७. श्री जयप्रकाश सिंह—कलकत्ता
१४८. श्री गंगाधर मिश्र—एन० सी० हिल्स
१४९. श्री वी० वी० शेरपा—लुमडिंग (आसाम)
१५०. श्री शंकर लाल अगरवाल—नगांव (आसाम)
१५१. श्री रामगोपाल खेमका—कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी—इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश बिहारी—जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा—काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६, सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१५७. श्रीमती गिरजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५८. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, नईदिल्ली
१५९. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१६०. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा(म०प्र०)
१६१. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म०प्र०)
१६२. श्री डी०एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६३. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६४. डा०(श्रीमती)रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर(उ प्र०
१६५. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६६. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६७. कुमारी जसवीर कौर आहूजा पटियाला पंजाब
१६८. श्रीमती मंजुला बोर्दिया उदयपुर (राजस्थान)
१६९. श्रीमती सुरेश अम्बाला शहर (हरयाणा)
१७०. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ०प्र०)
१७१. श्री एस० टी पुराणिक नागपुर
१७२. श्री धन्नालाल अमृतलाल सालंकी कलवानी
१७३. डॉ० कमलाकांत बड़ोदा (गुजरात)
१७४. डॉ० विनया पेण्डसे उदयपुर (राजस्थान)
१७५. सन्तोष बोनी रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. वन्दन	श्री मधुप	२
३. पूजा के रूप में सेवा	स्वामी रंगनाथानन्द	३
४. जाग्रत देवता (कविता)	स्वामी विवेकानन्द	९
५. आध्यात्मिक जीवन में प्रार्थना का स्थान	स्वामी यतीश्वरानन्द	१०
६. बिटिया के बोल	श्री अचिन्त्य कुमार सेनगुप्त	१६
७. विज्ञान एवं मानवीय मूल्य (२)	स्वामी रंगनाथानन्द	१८
८. प्रबन्ध-व्यवस्था में अद्वैत दृष्टि	डॉ० ओंकार सक्सेना	२०
९. मेरी आत्मा ही मेरा सर्वोच्च आदर्श	मोहन सिंह मनराल	२३
१०. देवलोक	स्वामी अपूर्वानन्द	२६
११. स्वामी विवेकानन्द के अग्नि मन्त्र		३०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिको

वर्ष—१५ जून—१९९६ अंक—६

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केशरनाथ लाभ

सहायक सम्पादक
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-४२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य -	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५५ रु०
एक प्रति —	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

यदि ईश्वर पर शुद्धा भक्ति न हुई तो कोई उपाय नहीं। यदि कोई ईश्वर का लाभ करके संसार में रहे तो उसे कुछ डर नहीं। यदि बीच-बीच में एकान्त में साधना करके कोई शुद्धा भक्ति प्राप्त कर सके तो संसार में रहते हुए भी उसे कोई डर नहीं।

(२)

जीव मानो दाल है। चक्की में पड़े हैं, पिस जायेंगे। परन्तु जो थोड़े से दाल के दाने खूँटी को पकड़कर रहते हैं, वे नहीं पिसते। इसलिए खूँटी अर्थात् ईश्वर की शरण में जाना चाहिए। उन्हें पुकारो, उनका नाम लो, तब मुक्ति होगी। नहीं तो कालरूपी चक्की में पिस जाओगे।

(३)

कामिनी-कांचन जीव को बाँध लेते हैं। जीव की स्वाधीनता चली जाती है। कामिनी ही से कांचन की आवश्यकता होती है, जिसके लिए दूसरों की गुलामी की जाती है; फिर स्वाधीनता नहीं रहती, फिर तुम अपने मन का काम नहीं कर सकते।

(४)

साधारण मनुष्य साधना करता है, ईश्वर पर भक्ति भी करता है, और संसार में भी फँस जाता है, स्त्री और धन के लिए भी हाथ लपकाता है। मक्खी जैसे फूल पर भी बैठती है, बर्फियों पर भी बैठती है और विष्ठा पर भी बैठती है।

(५)

देखो, अन्तर से पुकारने पर अपने स्वरूप को देखा जाता है, परन्तु विषय भोग की वासना जितनी रहती है, उतनी ही बाधा होती है।

वन्दना

—श्री 'मधुप'

(राग—मधुवन्ती, ताल—कहरवा)

हे ध्यानसिद्ध शतदल लोचन ।
हरने आए अज्ञान-तमस
करने आए भवदुख मोचन ।। हे ।।

लेकर वेदों का ज्ञान अहो
तुम ऋषिमण्डल से आए हो ।
तव अनुपम जीवन कर्म देख
मोहित विस्मित पुलकित जग जन ।। हे ।।

सन्मार्ग सनातन दिखलाया
सेवा का दर्शन सिखलाया ।
मधुमय सुगन्ध तव वाणी की
अब व्याप रही क्रमशः त्रिभुवन ।। हे ।।

द्रुत भोगवाद हो रहा म्लान
करता नवयुग तव कीर्तिगान ।
चरणों में लाया हूँ मैं भी
स्वीकार करो मेरा जीवन ।। हे ।।

पूजा के रूप में सेवा

स्वामी रंगनाथानन्द

(रामकृष्ण मिशन आश्रम, विशाखापत्तनम में भगवान श्रीरामकृष्ण के नवनिर्मित मन्दिर में प्राण-प्रतिष्ठा-समारोह के सिलसिले में ३० जनवरी १९९१ ई० के दिन आश्रम प्रांगण में एक सार्वजनिक सभा हुई। उस अवसर पर रामकृष्ण मठ एवं मिशन के सहाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज द्वारा अंग्रेजी में प्रदत्त अध्यक्षीय भाषण का अनुलिखन "वेदान्त केसरी" के जुलाई अंक में प्रकाशित हुआ था। वहीं से हम इसका अविकल हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर रहे हैं।—सं०)

श्रीरामकृष्ण का आविर्भाव किसी लघु समुदाय के लिए नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानवता के लिए हुआ था। उनके माँ सारदादेवी तथा स्वामी विवेकानन्द के उपदेशों में मानवीय उत्कर्ष का एक महान सन्देश निहित है। हमारी जनसंख्या का अधिकांश भाग अब भी श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द से सम्बन्धित शक्तिदायी एवं उन्नतकारी साहित्य से परिचित नहीं हो सका है। प्राक्-स्वाधीनता काल के बहुसंख्य भारतवासियों ने विवेकानन्द साहित्य का अनुशीलन किया और उससे देश की आजादी के लिए संघर्ष करने के लिए चरम उत्साह अर्जित किया। महान बलिदानों के उपरान्त आखिरकार १९४७ ई० में हमने अपनी स्वाधीनता पा ली। परन्तु स्वाधीनता पाने के बाद हमारी जनता ने उसी उत्साह के साथ विवेकानन्द साहित्य पढ़ना जारी नहीं रखा और इसके फलस्वरूप हम अपनी आजादी को सबकी भलाई में नियोजित करना सीख नहीं सके। अतः हमारे स्वातंत्र्योत्तर समाज से भ्रष्टाचार, हिंसा, हीन मनोवृत्ति और सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्रों में तरह-तरह के दुराचार घर करते नजर आये। यदि आजादी के बाद भी हमारी जनता उसी लगन के साथ रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का अध्ययन जारी रखती, तो हमें ये दुर्दिन नहीं देखने पड़ते। एक अंग्रेज इतिहासकार श्री एर्नाल्ड टॉयनबी का कहना है कि आधुनिक विश्व को केवल भारत ही बचा सकता है। उनका तात्पर्य किस भारत से था? निश्चय ही इस रुग्ण भारत से नहीं, बल्कि उनकी दृष्टि में तब बुद्ध, अशोक, रामकृष्ण और महात्मा गाँधी का भारत था।

रामकृष्ण-विवेकानन्द के फ्रांसीसी जीवनीकार रोमाँ रोलाँ ने एक अद्भुत वाक्य के माध्यम से श्रीरामकृष्ण का परिचय दिया है। उनका ग्रन्थ श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के जीवन का एक विश्लेषणात्मक तथा प्रशंसात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। पाश्चात्य पाठकों का इस ग्रन्थ से परिचय कराते हुए वे लिखते हैं—"रामकृष्ण न तो गाँधी के समान कर्मवीर थे और न ही कला व चिन्तन के क्षेत्र में गेटे तथा टैगोर के समान प्रतिभाशाली थे। वे बंगाल के एक छोटे ग्राम में जन्मे एक ब्राह्मण थे, जिनका बाह्य जीवन संकीर्ण परम्पराओं की सीमा में आबद्ध था, जिसमें कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई थी और जो तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक हलचलों से सर्वदा पृथक् था।" यह तो हुआ श्री रामकृष्ण के बाह्य जीवन का वर्णन। अब उनका यह अगला वाक्य अद्भुत है—"परन्तु उनके आन्तरिक जीवन में विविध देवताओं तथा मानवों का

विचित्र समावेश था।" यह एक बड़ी अद्भुत बात है। बाहर से श्री रामकृष्ण अत्यन्त साधारण दिखते थे। परन्तु आन्तरिक रूप से उनमें महान परिवर्तन आये थे।

जब मैं स्कूल में एक छात्र था, हमारे मुख्य शिक्षक ने एक दिन कहा—"एक चीज तुम लोगों को सीख लेनी चाहिए- सादा जीवन और उच्च विचार।" यह बात मेरे मन में घर कर गयी। मैं इस पर चिन्तन करने लगा। सादा जीवन और उच्च विचार। कितना अद्भुत भाव है यह। दो-तीन वर्षों बाद मैंने 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' नामक ग्रन्थ पढ़ा और उसमें मुझे इस "सादा जीवन और उच्च विचार" का एक सुन्दर प्रारूप मिल गया। बाद में जब माँ सारदा देवी की जीवनी मेरे पढ़ने में आई, तो उसमें भी मुझे यही आदर्श दीख पड़ा। बाह्यतः वे एक सरल सहज ग्राम्य महिला थीं, परन्तु आन्तरिक रूप से उनमें असीम मातृत्व की उज्ज्वल आत्मा स्पन्दित हो रही थी। हमारे आज के समाज में बहुत से लोगों का जीवन इसके ठीक उल्टा है। उनका बाह्य जीवन प्रभावशाली है, परन्तु अन्दर से वे खोखले हैं, यह हुआ ऊँचा जीवन और शून्य विचार।

आज हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि हम श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा तथा स्वामीजी के उपदेशों का क्या करें? धर्म की हमारी विकृत धारणा जो मूर्खतापूर्ण विधि-निषेधों से परिपूर्ण है मानवता के हाथ-पाँव तथा मानस को दृढ़तापूर्वक बाँध रखती है। श्रीरामकृष्ण इन समस्त बन्धनों को काटकर मानवमात्र को मुक्त करने आये थे। सच्चा धर्म सर्वदा आनन्द एवं मुक्ति प्रदान करता है। श्रीरामकृष्ण सदैव आनन्दविभोर रहा करते थे। जब आप "श्रीरामकृष्ण-वचनामृत" में श्रीम द्वारा लिपिबद्ध विवरण पढ़ते हैं, तो देखते हैं कि श्रीरामकृष्ण के कमरे में आनन्द का मेला लगा रहता था। श्रीरामकृष्ण के अनेक शिष्य थे, जिनमें अधिकांश युवा और कुछ प्रतिभावान छात्र भी थे। श्रीरामकृष्ण उन लोगों को उपदेश दिया करते थे, परन्तु उनके शिक्षण की पद्धति ऐसी थी, जिसमें न तो शिक्षक को यह बोध होता था कि वे ज्ञान दे रहे हैं और न ही शिष्यों को पता चलता था कि उन्हें शिक्षा दी जा रही है। यही वह शिक्षा है जो स्वामी विवेकानन्द के माध्यम से वेदान्त के एक युगान्तरकारी, उदार एवं गहन दर्शन और अध्यात्म के रूप में विश्व पर फट पड़ी थी।

इस दर्शन तथा आत्मविज्ञान के दो महान उपदेशों पर स्वामीजी ने विशेष बल दिया था। इनमें प्रथम था—मानव का आध्यात्मिक स्वरूप, जिसका तात्पर्य यह है कि हममें से प्रत्येक अव्यक्त ईश्वर है। आपको अपने जीवन, कर्म तथा अन्तर्मानवीय संबंधों द्वारा इस ईश्वरत्व को व्यक्त करना है। दूसरी बात यह थी कि यह ईश्वरत्व आन्तरिक रूप से ध्यान के द्वारा और बाह्य रूप से सेवा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। ये पाठ हम लोग विस्मृत कर चुके हैं और यही कारण है कि हमारी तथाकथित धर्म की साधना हमें वह शक्ति नहीं देती, जो एक सच्चे धर्म की साधना से मिलनी चाहिये। श्रीरामकृष्ण ने यह दिखा दिया है कि धर्म एक प्रबल शक्ति है। इसका उद्देश्य है हमें पशुभाव से उन्नत कर दिव्यभाव में प्रतिष्ठित करना। हमारा वेदान्त दर्शन निरन्तर बल देकर कहता है, "जन्तु मत बने रहो, जन्तु मत बने रहो। मुक्त हो जाओ, मुक्त हो जाओ।" जन्तु कौन है? वह जो सदैव बाह्य शक्तियों द्वारा परिचालित होता है, वह जिसमें आत्म-परिचालन की क्षमता नहीं होती। परन्तु वेदान्त कहता है कि अपना बन्धन तोड़ डालो। वह तुम्हारा अपना स्वभाव नहीं है। जन्तु मत बनो। मुक्त हो जाओ।

हमने यह सन्देश सुना, परन्तु अपनी दुर्बल मानसिकता के कारण इसे अलग ढंग से समझा। हममें से बहुतों के लिए 'मुक्त हो जाओ' का अर्थ है कि अब हम अनुशासनहीन हो सकते हैं। हमें अभी समझ लेना चाहिए कि अनुशासनहीनता मुक्ति में बाधक है। अनुशासनहीनता दास का चिह्न है और आत्मसंयम एक मुक्त पुरुष का लक्षण है।

आज प्रातःकाल इस परिसर में श्रीरामकृष्ण के इस सुन्दर मन्दिर में प्राण-प्रतिष्ठा हुई। हमारे भारत में मन्दिरों की भरमार है। अतः ऐसे मन्दिर का क्या वैशिष्ट्य है? एक मन्दिर सुन्दर स्थापत्य कला का एक नमूना मात्र नहीं है। यह आध्यात्मिक शक्ति के उत्पादन तथा वितरण का एक केन्द्र है। श्रीरामकृष्ण के एक मन्दिर के पीछे विविध सेवा कार्यों के माध्यम से मानवीय अवस्था को सुधारने का एक वृहत् प्रयास विद्यमान रहता है। यही सन्देश है जो हमें अपने उपनिषदों, गीता, श्रीमद्-भागवतम् और श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द से प्राप्त होता है। जब तक हम इस सन्देश की ओर ध्यान नहीं देंगे, तब तक हमें मन्दिरों के भीतर देवमूर्ति तथा बाहर आसुरी-लीला ही दिखाई देगी। अपने पिछले कुछ काल के राष्ट्रीय इतिहास से हमें यही शिक्षा मिलती है। हम अत्यन्त धार्मिक बनकर भी एक-दूसरे के शोषण में लगे रहे और इसके फलस्वरूप पूरा राष्ट्र अधःपतित हो गया। हम वेदान्त का यह सन्देश भूल गये कि सभी जीवों के भीतर एक ही आत्मा का निवास है। धर्म के इसी महान चरित्रनिर्माणकारी सन्देश का स्मरण कराने के निमित्त ही श्रीरामकृष्ण का आविर्भाव हुआ है।

श्रीमद्भागवतम् के तीन श्लोक इस सन्देश को बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त करते हैं। ये श्लोक उसके तीसरे स्कन्ध से लिए गए हैं, जहाँ भगवदावतार कपिल अपनी माता देवहूति को उपदेश देते हुए कहते हैं—

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्॥
अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयानघे।
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः॥
३/२९/२१,२४

—"आत्मा के रूप में मैं प्रत्येक जीव में विद्यमान हूँ, परन्तु मरणशील मानव जीवों में मेरी अवहेलना करके प्रतिमा में पूजन का स्वांग करता है। जो व्यक्ति छोटे-बड़े अनेक उपचारों से तरह तरह के विधि-विधानों के साथ मेरी मूर्ति का पूजन करते हुए भी, दूसरे जीवों का अपमान करता है, उससे मैं कदापि प्रसन्न नहीं हो सकता।"

अस्पृश्यता, जातिवाद तथा जनसाधारण के शोषण के द्वारा शताब्दियों तक हम यही तो करते आये हैं। देखिए तो कपिल कैसी भाषा का उपयोग करते हैं—नैव तुष्ये—"मैं बिलकुल प्रसन्न नहीं होता।" इसके बाद वे कहते हैं- अर्चितो अर्चायां भूतग्रामवमानिनः अर्थात् "भले ही तुम बड़े-बड़े मन्दिरों में भव्य उपचारों के साथ मेरी पूजा क्यों न करो, परन्तु यदि तुम भूतग्राम—बहुजन—आम आदमी का अपमान करते हो तो मैं तुम्हारी पूजा ग्रहण नहीं करता।" और इसलिए अगले श्लोक में एक सुन्दर सन्देश दिया जाता है -

अथ मां सर्वेषु भूतेषु भूतात्मनं कृतालयम्।
अर्हयेत् दानमानाभ्यां मैत्र्या अभिन्नेन चक्षुषा॥
३/२९/२७

—"अतः सभी जीवों में आत्मा के रूप में जो मैंने पहले से ही मन्दिर बना रखा है, उसी में दान

और सम्मान के द्वारा (सभी जीवों के अभाव दूर करते हुए और साथ ही साथ उनके स्वाभिमान की भी रक्षा करते हुए) मित्रता और अभिन्नता के भाव सहित मेरा पूजन करो।"

कपिल यहाँ कहते हैं—सभी जीवों में मेरा पूजन करो, मैं सबकी आत्मा हूँ; पहले से ही सभी जीवों में मैंने अपने लिए एक मन्दिर बना रखा है और उसी में न केवल मेरी सेवा बल्कि पूजा भी करो। ध्यान दीजिए यहाँ सेवयेत् नहीं अर्हयेत् शब्द का प्रयोग किया गया है जो अर्चना शब्द से निकला है। अर्चना का अर्थ है पूजा।

अब हमारे सामने एक बड़ा प्रश्न उठता है कि हम हम मनुष्य में ईश्वर को पूजा कैसे करें? यदि आप इस प्रश्न का सही उत्तर नहीं जानते हों तो शायद यह सोचने लगें कि क्या मैं सड़क पर मिलने वाले हर गरीब नर-नारी की आरती उतारूँ? नहीं, यहाँ तात्पर्य ऐसी पूजा से नहीं है। कपिल यहाँ स्पष्ट रूप से बताते हैं कि एक जीव में भगवान की पूजा कैसे की जाय, "तुम अपने आस-पास के लोगों के उचित अभावों को दूर करके मेरी पूजा कर सकते हो, परन्तु ऐसा करने के साथ ही साथ उन्हें सम्मान भी देना होगा।" क्या ही अद्भुत भाव है! हम दान-परोपकार कैसे करें? क्या अहंकारपूर्वक? कदापि नहीं, बल्कि सम्मान के साथ। आप जिनकी सेवा करते हैं, उन्हें सम्मान भी दीजिए। इस श्लोक में और भी तीन सुन्दर एवं तात्पर्यपूर्ण शब्द हैं—मैत्र्या अभिन्नेन चक्षुषा, "परम मित्रता एवं अभिन्नता के भाव सहित।" मूलतः हम सब एक हैं। वेदान्त का यह सारगर्भित सन्देश रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य में सर्वत्र ही बारम्बार दृष्टि-गोचर होता है।

भाव यह है कि सभी जीवों की सेवा करके, उनके अभावों को दूर करके: उनके आँसू पोंछकर—उनमें ईश्वर की सेवा करनी होगी। भारत में हमें इसको बड़े पैमाने पर ग्रहण करना होगा। आजकल जब आप किसी सेवाकार्य के निमित्त किसी ग्रामीण अंचल में जाते हैं, तो वहाँ के लोग आपके ऊपर सन्देह करते हैं। वे सोचते हैं कि कहीं ये लोग पुनः हमारा शोषण करने तो नहीं आ गये। उनका ऐसा सोचना न्यायसंगत ही है, क्योंकि वस्तुतः अनेक शताब्दियों से वे शोषित होते रहे हैं। इस कारण जब शहरी लोग ग्रामीण अंचलों में जाते हैं, तो वहाँ के निवासी डर जाते हैं। इस परिस्थिति को बदलना होगा। हमें वहाँ एक मित्र के रूप में जाना होगा। हमें उन्हें समझाना होगा, "हम यहाँ आपकी सहायता करने आये हैं ताकि आप लोग अपने पैरों पर खड़े हो सकें।" हमें अपनी वाणी तथा कार्य के द्वारा उन्हें इस बात का विश्वास दिलाना होगा। केवल तभी वे आप लोगों को स्वीकार कर सकेंगे। यही है वह मैत्रीभाव, जिसकः पूर्वोद्धृत संस्कृत में उल्लेख हुआ है।

अन्तिम दो शब्द--अभिन्नेन चक्षुषा—"अभिन्नता के भाव सहित"—भारतीय आध्यात्मिक परम्परा के सर्वोच्च उपदेश का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपनिषदों तथा गीता में सर्वत्र ही आपको अभिन्नता का यह महान भाव दीख पड़ता है। मूलतः हम सब अभेद हैं। एक ही आत्मा हम सबमें विद्यमान है।

परन्तु खेद की बात है कि जिस देश ने अभिन्नता के इस महान दर्शन का प्रचार किया, उसी ने व्यवहार में अत्यधिक भिन्नता का भाव दर्शाया। हमारे इतिहास में काफी काल तक जातिभेद, वर्ग-भेद तथा साम्प्रदायिक भेद का राज्य बना रहा। हम मनुष्यों के बीच हर प्रकार के भेद को महत्व देते रहे हैं। इसे दूर करना होगा। यह असत्य है, निराधार है और समाज के लिए अकल्याणकारी

भी है। दुर्भाग्यवश स्पष्ट विचारों के अभाव में जनतंत्र के नाम पर आज हम मूर्खतापूर्वक इन भेद-भावों को मजबूत बना रहे हैं। अभिन्नता के इस भाव को एक ध्रुव दृष्टिकोण के रूप में विकसित करना होगा। आजकल हम पाँच वर्षों में केवल एक बार चुनाव के दौरान ही इसका उपयोग करते हैं। उस समय हमारे तथाकथित बड़े लोग भी एक सामान्य जन की झोपड़ी के सामने जाकर खड़े होते हैं और घोषणा करते हैं, "हम सब एक हैं। हमें अपना वोट दीजिए हम आपके सेवक हैं।" परन्तु बुरी बात यह है कि यह भाव वे अपने पूरे राजनैतिक कार्यकाल के दौरान बनाये नहीं रहते, बल्कि यह बुलबुले के समान क्षणिक होता है और एक दिन में ही समाप्त हो जाता है।

प्रत्येक मानव का पूर्ण महत्व लोकतंत्र का केन्द्रीय सिद्धान्त है। हमारे वेदान्त दर्शन का भी यही केन्द्रीय उपदेश है। जब आप देखते हैं कि किसी वृद्ध महिला को वोट देने हेतु उठाकर मतदान-केन्द्र में ले जाया जा रहा है, तो क्या कभी आपने उसके महत्व पर विचार किया है? शारीरिक रूप से वह वृद्ध है, अशक्त है; परन्तु राजनीतिक दृष्टि से उसमें एक आन्तरिक अहस्तान्तरणीय मूल्य है। और वह उसे उसके लोकतांत्रिक नागरिकता के अधिकार से प्राप्त हुआ है। उसमें निहित वह मूल्य किसी भी मायने में प्रधानमंत्री या अन्य किसी से न्यून नहीं है। अब महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या उस वृद्धा का मूल्य चुनाव समाप्त होने के बाद भी स्वीकृत होता है? हमारा अनुभव तो कहता है कि नहीं होता और यही हमारे लोकतंत्र की केन्द्रीय दुर्बलता है। केवल चुनावों के दौरान छोड़कर, बाकी समय हमारी जनता एक नागरिक का सम्मान पाने के स्थान पर पशु का सा व्यवहार पाती है। हमारे राजनीतिज्ञों तथा प्रशासकों—दोनों वर्गों को देश के नागरिकों के साथ सम्मान तथा सहानुभूति से पेश आना सिखाने के लिए उन्हें शताब्दियों तक वेदांतिक तथा लोकतांत्रिक शिक्षा देने की आवश्यकता है। दस खंडों में प्रकाशित शक्तिदायी तथा पवित्रकारी "विवेकानन्द साहित्य" से हमें मनुष्य-निर्माण तथा राष्ट्र-गठन का यही वेदान्तिक सन्देश प्राप्त होता है।

हमारे अधिकांश देशवासी मन्दिरों में ईश्वर से सुनने नहीं, बल्कि सुनाने को जाते हैं। आज सम्पूर्ण भारत में हमारा धर्म कोलाहलपूर्ण, दिखावट-पसन्द तथा स्वार्थकेन्द्रिक हो गया है। परन्तु रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य में आपको धर्म के प्रति एक नया दृष्टिकोण परिलक्षित होगा। इस साहित्य में हमें क्या बताया गया है? यह कि आध्यात्मिक खोज की पिपासा लेकर मौन भाव से मन्दिर में जाओ। उसे स्वच्छ रखो। अपना चरित्र गढ़ने के लिए तथा उसे लोगों की सेवा में अभिव्यक्ति करने के लिए, वहाँ से जितना भी हो सके आध्यात्मिक प्रेरणा ग्रहण करने का प्रयास करो। इसके बाद उस प्रेरणा को अपने जीवन तथा कार्यों के बीच रूपायित करने का प्रयास करो। भारत के कोटि-कोटि शिक्षित लोग इस अद्भुत सन्देश से अनभिज्ञ हैं। रामकृष्ण संघ के शाखाकेन्द्र जाति, मत, लिंग आदि से निरपेक्ष रहकर, सभी लोगों के बीच इस जीवनदायी तथा प्रेरक सन्देश के प्रचार को समर्पित हैं। इस सन्देश में इतनी शक्ति एवं मोहकता है कि यह हर राष्ट्र को लोगों को आकृष्ट करता है।

विश्व-मानस पर भारत का सर्वाधिक प्रभाव दर्शन तथा अध्यात्म के क्षेत्र में ही रहा है। हमारे राजनीतिक विचारों या अवदानों के लिए कोई भी हमारा सम्मान नहीं करता। इस क्षेत्र में हम वस्तुतः ग्रहीता मात्र रहे हैं। परन्तु भारत के दर्शन एवं अध्यात्म के समक्ष सम्पूर्ण विश्व श्रद्धावनत हो जाता है। विदेशों में स्थित हमारे राजनयिक दूता-

वास हमारे अपने खर्च से चलाए जाते हैं, परन्तु वहाँ के हमारे आध्यात्मिक दूतावास स्थानीय लोगों की ही आर्थिक सहायता से चलाये जाते हैं। हमारे देशवासी इसके तात्पर्य पर थोड़ा विचार करें तो बड़ा अच्छा हो। आप स्वयं ही स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थ पढ़कर देख लें कि वे प्रेरणा के कैसे खान हैं। यह एक सशक्त साहित्य है, मानवतावादी भावनाओं का साहित्य है।

श्रीरामकृष्ण का जो मन्दिर आज हमारे समक्ष खड़ा है, यह उस अद्भुत भाव एवं प्रेरणा के शक्ति-केन्द्रों में से एक है। ये मन्दिर मानों ऐसे केन्द्र हैं, ऐसे डायनेमो हैं, जहाँ से विचारों के प्रवाह निसृत होकर, न केवल धर्म के संकीर्ण दायरे में अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानवता को उन्नत करते हैं।

●

मालिक का फर्ज

घटना उस समय की है, जब हजरत अली अरब के खलीफा बने थे, हजरत अली साहब के भाई को उसकी बीबी ने सलाह दी—'आपके भाई अब खजाने के मालिक बन गए हैं, इसलिए उनसे कहकर अपनी तनख्वाह कुछ बढ़वा लें।'

हजरत अली के भाई को सुझाव पसन्द आ गया। उसने अपनी पत्नी से कहा कि किसी दिन भाई साहब को दावत पर आमंत्रित करो और यहीं अपनी बात कह देंगे।

दावत का आमंत्रण पाकर हजरत अली अपने भाई के घर पधारे और दावत खाने के बाद पूछा कि आप लोगों ने मुझे कैसे याद किया। भाई की बीबी बोली—'इस वक्त आप खजाने के मालिक हैं, यदि अपने भाई की तनख्वाह में कुछ बढ़ोत्तरी कर दें तो उनका गुजारा आराम से हो सकता है। इस पर हजरत अली साहब ने पूछा—तो फिर आप लोगों ने मेरी दावत का इन्तजाम कैसे किया ?

भाई की बीबी ने उत्तर दिया कि वह अपने रोजाना के राशन में मुट्ठी भर बचाती रही और फिर जब आपकी दावत के लायक हो गया तो आपको बुलवा लिया।

हजरत अली ने मुट्ठी भर राशन की कीमत लगाकर उसके बराबर भाई की तनख्वाह प्रतिदिन कम कर दी।

—रंजन राजन

जाग्रत देवता

—स्वामी विवेकानन्द

वह, जो तुममें है और तुमसे परे भी,
जो सबके हाथों में बैठकर काम करता है,
जो सबके पैरों में समाया हुआ चलता है,
जो तम सबके घट में व्याप्त है.
उसीकी आराधना करो और
अन्य प्रतिमाओं को तोड़ दो !

जो एक साथ ही ऊँचे पर और नीचे भी है;
पापी और महात्मा, ईश्वर और निकृष्ट कीट,
एक साथ ही है, उसी का पूजन करो—
जो दृश्यमान है, ज्ञेय है, सत्य है, सर्वव्यापी है,
अन्य सभी प्रतिमाओं को तोड़ दो !

जो अतीत जीवन से मुक्त,
भविष्य के जन्म-मरणों से परे है,
जिसमें हमारी स्थिति है
और जिसमें हम सदा स्थित रहेंगे,
उसीकी आराधना करो,
अन्य सभो प्रतिमाओं को तोड़ दो !

ओ विमूढ़ ! जाग्रत देवता की उपेक्षा मत करो,
उसके अनन्त प्रतिबिम्बों से ही यह विश्व पूर्ण है।

काल्पनिक छायाओं के पीछे मत भागो
जो तम्हें विग्रहों में डालती हैं,
उस परम प्रभु की उपासना करो,
जिसे सामने देख रहे हो,
अन्य सभी प्रतिमाएँ तोड़ दो !

आध्यात्मिक जीवन में प्रार्थना का स्थान

—स्वामी यतीश्वरानन्द
अनुवादक— स्वामी ब्रह्मेशानन्द

प्रार्थना—सांसारिक और आध्यात्मिक

एक पादरी ने एक छोटे लड़के से पूछा : "क्या तुम प्रतिदिन प्रार्थना करते हो ?" लड़के ने उत्तर दिया, "नहीं, श्रीमान्, कुछ दिन मैं कुछ नहीं चाहता।" बालक के लिए प्रार्थना का अर्थ भगवान् से विभिन्न सांसारिक वस्तुएँ माँगना है। जिस तरह वह अपने माता-पिता से विभिन्न वस्तुएँ माँगता है, उसी तरह वह भगवान् से भी माँगता है। बालक की प्रार्थना की धारणा प्रायः लोगों में प्रौढ़ावस्था तक बनी रहती है। लोग भगवान् को एक महान वरदाता समझते हैं। वे उससे बहुत-सी वस्तुएँ माँगते रहते हैं और यदि उनकी ये प्रार्थनाएँ "पूर्ण" नहीं होतीं तो वे भगवान् के अस्तित्व में ही सन्देह करने लगते हैं। आजकल यह भयानक युद्ध (द्वितीय विश्व महायुद्ध। यह प्रवचन १९४४ में फिलाडेल्फिया में दिया गया था।) हो रहा है। जर्मनी, इटली, इंगलैंड, अमेरिका, इन युद्धरत देशों में लोग अपने राष्ट्र की विजय के लिये प्रार्थना कर रहे हैं। यहाँ तक कि ईसाई धर्म-समुदाय भी विभक्त है, तथा पादरी और धर्माचार्यगण भगवान् से अपने-अपने राष्ट्र का पक्ष लेने के लिये प्रार्थना कर रहे हैं। इन लोगों ने भगवान् को क्या समझ रखा है ? आसमान में बैठा पृथ्वी के लोगों के प्रति पक्षपाती अत्याचारी शासक जो लोगों की लोभ और घृणा की मनोवृत्तियों के साथ खेल कर रहा है ?

सिकन्दरिया के प्रथम ईसवी के यहूदी दार्शनिक फिल जुडास के मतानुसार भगवान् परम पवित्र और समस्त मंगल का मूल है, तथा जड़ पदार्थ अशुभ का कारण है। ईश्वर तथा पूर्ण-शुभ को पुनः प्राप्त करना मानव का लक्ष्य है। यह मत ईसाई धर्मशास्त्र में प्रमुख स्थान रखता है। अशुभ की शक्तियों का शैतान के रूप में मूर्तिकरण किया गया है। मूर्तीकृत शुभ और अशुभ का यह द्वैतात्मक सिद्धान्त पारसी धर्म से आया है। ईसाई मतानुसार ईसा-मसीह ने अशुभ पर विजय प्राप्त की है।

हिन्दू धर्म के अनुसार ईश्वर शुभ और अशुभ दोनों से परे हैं, जो माया के राज्य में हैं। ईश्वर पूर्ण चैतन्य और आनन्द स्वरूप हैं। वह अनन्त सत्स्वरूप हैं। सृष्टि और संहार, शुभ और अशुभ माया-शक्ति संज्ञक एक ही शक्ति के दो रूप हैं। इन शक्तियों की गतिविधि मानव की सहजात प्रवृत्तियों से सम्बन्धित रहती है। मानव की अविद्या और विद्या नामक दो प्रवृत्तियाँ हैं। विद्या पवित्रता, अनासक्ति, भगवद्भक्ति, और ज्ञान के रूप में अभिव्यक्त होती है। अविद्या की अभिव्यक्ति मोह, निष्ठुरता, स्वार्थपरता, कामुकता आदि के रूप में होती है। ये प्रवृत्तियाँ मानव की आत्मा से जुड़ी रहती हैं और उसके जन्म-जन्मान्तर के संचित कर्मों के फलस्वरूप होती हैं। यहीं मानव के दायित्व का प्रश्न उठता है। वह धर्म संज्ञक विद्या-पथ का चयन कर परमात्मा के निकट से निकटतर पहुँच कर अन्त

में भगवद् कृपा से शुभाशुभ दोनों का अतिक्रमण कर सकता है। अथवा अविद्या या अधर्म का मार्ग चुन कर भगवान् से दूर हट कर दुःख के बोझ को अधिकाधिक बढ़ा सकता है। शुभाशुभ से परे होते हुए भी भगवान् मानव जाति के कल्याण के लिए मानव के रूप में, अवतरित होता है। अवतार मानवजाति को अपने आधार, निज धाम, अनन्त परमात्मा तक वापस जाने की एक नयी साधना-पद्धति प्रदर्शित करता है।

भगवान् सभी प्राणियों का अन्तर्यामी साक्षी है। आत्मा की परम-आत्मा का अनुसन्धान ही आध्यात्मिक जीवन कहलाता है। प्रार्थना इस अनुसन्धान का एक उपाय है। प्रार्थना हमें भगवान् के निकट ले जाती है। वह हमारी अन्तर्निहित आध्यात्मिक शक्ति को जाग्रत करती है। परमात्मा हमारी प्रार्थना सुनते हैं, लेकिन जैसा श्रीरामकृष्ण ने बार-बार कहा है, प्रार्थना आन्तरिक होनी चाहिए। प्रार्थना में हृदय और बुद्धि एक होने चाहिए। भगवान् हमारी प्रार्थना को इस तरह पूर्ण करते हैं, जो हमारे लिये कल्याणकारी हो। कई बार लोग यह नहीं जानते कि उनके लिये क्या श्रेयष्कर है। अतः यह अच्छा ही है कि उनकी बहुत-सी स्वार्थ पर सांसारिक प्रार्थनाओं का कोई उत्तर ही नहीं मिलता। यदि भगवान् सभी लोगों की सभी प्रार्थनाएँ पूर्ण कर दे तो दुनिया अस्तव्यस्त हो जायेगी और प्रत्येक जीवित व्यक्ति पागल हो जायेगा। एक बालिका ने अपनी नियमित रात्रि-प्रार्थना के बाद भगवान् से कहा : फूलों को शीतकाल में ताजगी देने के लिए सुन्दर हिमपात भी करो।" उसके बाद उसने अपनी माँ से अपने मन की बात कही : "इस बार मैंने भगवान् को मूर्ख बनाया है; मैं तो फिसलने के खेल के लिए हिम चाहती हूँ।" इस तरह प्रार्थनाओं द्वारा भगवान् को मूर्ख नहीं बनाया जा सकता।

प्रार्थना के साथ श्रद्धा अत्यन्त आवश्यक है। भगवान् सभी अवस्थाओं में हमारे एकमात्र शरण हैं, ऐसी आस्था होने पर ही प्रार्थना प्रभावशाली हो सकती है। दो व्यक्ति एक छोटी खुली नौका में सागर में भटक रहे थे। उनमें से एक ने, जो बड़ा पियक्कड़ था, भगवान् से प्रार्थना की, "हे प्रभु, मेरी रक्षा कर दो, मैं अब कभी शराब नहीं पीऊँगा।" उसके साथी ने सलाह देते हुए कहा, "जरा ठहरो, ऐसी प्रतिज्ञा न करो, मुझे एक जहाज आता दिखाई दे रहा है।" प्रार्थना करते समय लोग इस तरह सोचते हैं।

लोग भय, चिन्ता अथवा आशंका के कारण प्रार्थना करते हैं। आदि-मानव प्रकृति की विभिन्न शक्तियों से अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना करता था। जूलू आदिवासी उपासक भगवान को डर दिखाता हुआ कहता है : "मेरी बात सुनो नहीं तो मैं तुम्हें बिच्छुबटी खिलाऊँगा।" आध्यात्मिक भावापन्न व्यक्ति हृदय के अन्तस्थल से प्रार्थना करता है। उसकी प्रार्थना उसके आत्मा की भुभुक्षा की द्योतक होती है। सच्चा भक्त प्रार्थना करते समय भगवद् इच्छा के प्रति अपने को समर्पित कर देता है। उसकी प्रार्थना सत्यलोक के लिए होती है। लाखों हिन्दुओं द्वारा प्रतिदिन की जानेवाली 'गायत्री' नामक प्रसिद्ध पुरातन हिन्दु प्रार्थना एक अत्यन्त उदात्त प्रार्थना है। "तीनों लोकों को आलोकित करने वाले परमात्मा की उत्कृष्ट महिमा का हम ध्यान करते है। वह हममें आध्यात्मिक प्रज्ञा जाग्रत करे।" ध्यान सर्वश्रेष्ठ (उत्कृष्टतम) प्रार्थना है, जिसमें मन निरवच्छिन्न रूप से गहरी निस्तब्धता में परमात्मा की ओर प्रवाहित होता है।

जब स्वामी विवेकानन्द किशोरावस्था में थे, तब उनके पिता का अचानक देहान्त हो गया। उनकी माता, अनेक बच्चों और परिवार के सदस्यों के

भरण-पोषण का भार उन पर आ पड़ा। परिवार के भरण-पोषण के सम्मानजनक उपाय को पाने के उनके सभी प्रयास विफल हुए, और विपदग्रस्त हो वे अपने प्रिय गुरु श्रीरामकृष्ण के पास पहुँचे और अपने लिये प्रार्थना करने का अनुरोध किया। लेकिन त्यागमूर्ति श्रीरामकृष्ण ने युवक से कहा, "स्वयं मन्दिर में जा कर जगन्माता से प्रार्थना करो। वे तुम्हारी बात अवश्य सुनेंगी।" माँ जगदम्बा के समक्ष उपस्थित होने पर युवक विवेकानन्द को माँ के दैवी स्वरूप का तथा उनकी चैतन्य सत्ता का अनुभव हुआ। वे अपने परिवार तथा सांसारिक मामलों को पूरी तरह भूल गये और माँ जगदम्बा से पुनः पुनः भक्ति और ज्ञान के लिये प्रार्थना करने लगे। श्रीरामकृष्ण के पास लौटने पर ही उन्हें अपनी "गलती" का पता चला। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें पुनः माँ जगदम्बा के पास भेजा। लेकिन विवेकानन्द पुनः ज्ञान और भक्ति के लिये ही प्रार्थना कर सके। ऐसा कई बार हुआ। अन्त में श्रीरामकृष्ण को उनपर दया आई और उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया कि उनके परिवार के सदस्यों को जीवन की अल्पतम आवश्यकताओं का अभाव नहीं होगा।

यह घटना हम सभी के लिये शिक्षाप्रद है। हमें केवल भक्ति, शक्ति और शुद्धि के लिये प्राथना करना चाहिये। यह है आध्यात्मिक प्रार्थना। इसके अनेक रूप हो सकते हैं। लेकिन इन सभी का उद्देश्य जीव को परमात्मा के निकट ले जाना है। आध्यात्मिक प्रार्थना वास्तविक ध्यान की प्रथम सीढ़ी है।

हिन्दू धर्म में आध्यात्मिक प्रार्थनाएँ

सभी धर्मों और सभी कालों में भावों और साधकों ने अपनी आन्तरिक अभिलाषाओं एवं श्रेष्ठतम भावनाओं को स्तवों, स्तोत्रों एवं प्रार्थनाओं के माध्यम से स्वाभाविक अभिव्यक्ति प्रदान की है। कभी-कभी वे प्रेमपूर्ण हृदय से चिन्ता और आकांक्षा रहित हो उच्च भावावस्था में विचरण करते हुए प्रार्थना और भजन करते हैं। लेकिन अधिकांश क्षेत्र में अपनी ससीमता और अपूर्णता का बोध, अथवा दुःख और असहायता का बोध श्रान्त और संघर्षरत जीवों को सांत्वना और सहायता के लिये सबशक्तिमान और नित्य-पूर्ण परमात्मा की प्रार्थना करने को बाध्य करता है। जैसा श्रीकृष्ण भगवद्-गीता में कहते हैं, आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी, चार प्रकार के लोग भगवान् का भजन करते हैं (भगवद्गीता,)

ज्ञानी के लिये भक्ति और प्रेम के अतिरेक के कारण भगवान् का भजन, ध्यान और गुणगान करना स्वाभाविक है। लेकिन दूसरों की बात अलग है। सांसारिक समस्याओं के थपेड़ों अथवा पाप-बोध के कारण तथा मानव-सहायता की व्यर्थता को जानकर आर्त व्यक्ति सुरक्षा और आश्रय के लिये भगवान को पुकारता है। सुखान्वेसी व्यक्ति (अर्थार्थी) समस्त मानवी प्रयासों को निष्फल जान-कर अपनी असमर्थता के कारण अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये भगवान की ओर देखता है। जिज्ञासू सांसारिक समस्याओं अथवा लौकिक वासनाओं द्वारा उद्विग्न नहीं होता, लेकिन वह हृदय के अन्त-स्थल में एक आन्तरिक पिपासा का, ससीमता को एक पीड़ा, एक रिक्तता का अनुभव करता है, जिसे संसार की कोई भी वस्तु दूर नहीं कर सकती। उसकी आत्मा एक उच्चतर जीवन के लिये व्याकुल होती है, और अपने अनुसन्धान के दौरान वह शान्ति और आनन्द के उत्स, परमात्मा के निकट पहुँचता है।

ये सभी प्रकार के भक्त नितान्त असहाय होकर भगवत् कृपा और सहायता को याचना करते हैं।

अतः भगवान् की उनको स्वाभाविक रूप से आवश्यकता है। और यह आवश्यकता इतनी अधिक होती है कि अनीश्वरवादी भी असामर्थता और निराशा के क्षणों में सर्वशक्तिमान परमात्मा को सांत्वना और आश्रय के लिये पुकारते हुए देखे जाते हैं। "हे भगवान् यदि तुम हो, तो, मेरी आत्मा यदि मेरी आत्मा हो, तो उसकी रक्षा करो," तथाकथित अनीश्वरवादी की इस आपाततः हास्यास्पद प्रतीत होनेवाली प्रार्थना में एक महान सत्य नीहित है, जो धर्म-मनोविज्ञान के सहृदय, उदार-हृदय अध्येता को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकता। एक अनीश्वरवादी भी कभी-कभी जीवन की क्षणभंगुरता का अनुभव किये बिना नहीं रह सकता। एक आध्यात्मिक साधक को इसका बहुत कटु अनुभव होता है और वह हृदय से भगवान की सहायता के लिये पुकार उठता है :

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं
याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायाति गताः पुनर्न दिवसाः
कालो जगत् भक्षकः।
लक्ष्मीस्तोयतरंग भंग चपला
विद्युच्चलं जीवितं
तस्मान्मां शरणागतं शरणदत्वं
रक्ष रक्षाधुना ॥
(श्रीशंकराचार्य कृत शिवापराध क्षमापना स्तोत्र—१३)

अर्थात् "भगवान् प्रतिदिन आयु नष्ट होती दिखाई देती है। यौवन क्षय होता है। बीते दिन वापस नहीं आते। काल जगत् का भक्षक है। लक्ष्मी जल की तरंग के समान क्षणस्थायी है, और जीवन भी विद्युत की चमक के समान क्षणिक है। अतः हे शरणदाता मुझ शरणगत की अभी रक्षा कीजिये।"

उन्नत सत्यान्वेषी साधक सर्वव्यापी और सर्वातीत परमात्मा के अपने अनुभव के आधार पर प्रार्थना कर सकते हैं। उनके अनुसार परमात्मा पवित्र और मंगलमय है। लेकिन अनुन्नत उपासक भगवान की वस्तुतः कोई उच्च धारण पोषण नहीं कर पाता। भले ही वह सर्वव्यापी परमात्मा में विश्वास करने का दावा करता हो, लेकिन वह उसकी मानव रूप धारी तथा मानव भावनाओं युक्त सर्वशक्तिमान व्यक्ति के रूप में ही कल्पना करता है। और वह अपने भगवान् को भक्तवत्सल समझते हुए भी वह उसे भक्त-विद्वेषियों का दंडदाता नास्तिकों को अनन्त नर्क में भेजने वाला, भयानक और ईर्ष्यालु भी मानता है। और कभी-कभी श्रद्धालु उपासक प्रेममय भगवान को घृणा युक्त स्तोत्र भी सुना बैठना है। यही नहीं वह दूसरों में सच्चे अथवा कल्पित दोष देखता है, लेकिन स्वयं में विद्यमान उनसे कहीं अधिक दोषों का अनभिज्ञ बना रहता है। यह बात संसार में सर्वत्र लगभग सभी धर्मों और सम्प्रदायों में पायी जाती है। लेकिन अपनी प्रारंभिक धारणाओं के ऊपर उठने पर साधक भगवान की श्रेष्टत्तर धारणा का पोषण करने लगता है, जो सर्वव्यापी ही नहीं बल्कि समग्र पवित्रता और सद्गुणों का उत्स भी है।

यही नहीं, साधक आत्मनिरीक्षण की क्षमता भी अधिकाधिक अर्जित करता है, और वस्तुतः यही आध्यात्मिक प्रगति का मुख्य मापदंड है। अन्तर्दृष्टि उदित होने पर वह अपने शरीर और मन को दूषित करनेवाली बुराइयों और अपवित्रताओं को आसानी से पहचान पाता है। वह अपने पाप बोध और अपूर्णता से व्यथित हो उठता है और उन्हें उस पतित पावन भगवान की कृपा और संस्पर्श से दूर करना चाहता है, जिसे औपनिषदिक भाषियों ने सर्वव्यापी स्वयंज्योति, निराकार, शुद्ध और अपापविद्ध कहा है; (स पर्यगाच्छ क्रम कायमव्रणम

स्नाविरं शुद्धम पाप विद्धम् । ईशावास्योपनिषद, ८) जो "विपाप" है, "जो पवित्र हृदय में निवास करता है;" (दहं विपापं परमेश्यभूत यत् पुण्डरीकं पुरमध्य संस्थम् । महानारायणोपनिषद् १२·१६) तथा जो ऐसे किसी भी व्यक्ति से जाना नहीं जा सकता जो दुराचरण से विरल नहीं हुआ है, तथा जिसने अपने मन और इन्द्रियों को नियंत्रित नहीं किया है ।"

ना विरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्नमानसो वादि प्रज्ञाने नैनमाप्नुयात् ॥
कठोपनिषद् । : ११ : २४)

त्राणकर्ता और शुद्धिकर्ता ईश्वर

नित्यशुद्ध और शुद्धिकर्ता परमात्मा की धारणा ऋग्वेद संहिता तक में पायी जाती है, जहाँ ऋषि विश्व के महान धर्माध्यक्ष, वरुण से पाप के लिये क्षमायाचना तथा पाप और बुराईयों के बन्धनों से अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना करते हैं ।

विमच्छथाय रशनामिवाण
ऋध्याम ते वरण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे
मा मया शार्यपसः पुर ऋतोः ॥
(ऋग्वेद २:२८:५)

अर्थात् "हे वरुण पापरूपी रज्जु को मुझसे दूर करो; हम तुमसे जल की एक धारा प्राप्त करें । मेरे सत्कर्म को बुनाई का तन्तु न काटो । यज्ञांगों को फलोत्पत्ति के पूर्व नष्ट न करो ।

यह विचार वैदिक तथा हिन्दु धार्मिक साहित्य भंडार में पुनःपुनः पाया जाता है । उपनिषद् में ऋषि प्रार्थना करते है :

चरणं पवित्रं विततं पुराणं,
येन पूतस्तरसि दुष्कृतानि ।
तेने पवित्रेण शुद्धेन पूताः,
अतिपाप्मानमराति तरेम ॥
(महानारायण-उपनिषद् १: १)

अर्थात् "पवित्र, सर्वव्यापी पुराण ज्योतिर्मय परमात्मा के द्वारा शुद्ध हो मनुष्य पापों से तर जाता है । हम भी उन नित्यशुद्ध, शुद्धिकर्ता परमात्मा के द्वारा पूत हो पापरूपी महाशत्रुओं का अतिक्रमण करें ।"

चूँकि पवित्रता भगवत् कृपा, ज्ञान और मुक्ति के लिये अनिवार्य है, अतः भक्त प्रार्थना करता है :

यन्मे मनसा वाचा कर्मणा
वा दुष्कृतं कृतम् ।
तन्न इन्द्रो वरुणो बृहस्पतिः
सविता च पुनन्तु पुनःपुनः ॥
(महानारायणोपनिषद् १:१२)

अर्थात् इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, सवितृ रूपी परमात्मा मेरे द्वारा मन, वचन और कर्म द्वारा किये गये पापों को क्षमाकर मुझे पुनःपुनः शुद्ध करें ।

वस्तुतः उपनिषदों में यह प्रार्थना बार-बार पायी जाती है :

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधियों रूद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
सनो बुद्धया शुभया संयुनक्तुः ॥
(श्वेताश्वतर उपनिषद् ३:४)

अर्थात्, देवताओं के प्रभवस्थान और आश्रय, विश्वाधिप अशुभ के लिये रूद्रस्वरूप, महर्षि, जिसने पूर्व में हिरण्यगर्भ को पैदा किया, वह परमात्मा हमें शुद्धि बुद्धि प्रदान करें ।

अशुभ और अपवित्रता, सच्चे साधक को अत्यधिक कष्ट प्रदान करते हैं, क्योंकि वे परमात्मा के

साथ उसके मिलन में बाधक होते हैं। अतः वह इस विपत्ति में पुनःपुनः त्राणकर्ता और शुद्धिकर्ता भगवान को पुकारता है। और भगवान भी अनन्त कृपा पूर्वक उसे आश्वासन प्रदान करते हुए कहते हैं :

अपि चेदसि पापेभ्य सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥
(भगवद्गीता ४:३६)

अर्थात् यदि तुम समस्त पापियों में सबसे अधिक पापी होओ, तो भी ज्ञान-नौका द्वारा सभी पापों को पार कर जाओगे। और प्रेममय भगवान भक्त को सांत्वना प्रदान करते हुए स्वयं को उनके प्रति समर्पित होने के लिये कहते हैं :

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः॥
भगवद्गीता १८:६६

अर्थात्, समस्त औपचारिक धर्मों को त्यागकर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें समस्त पापों से मुक्त कर दूँगा। शोक न करो।

वस्तुतः ईश्वर विषयक हिन्दु-धारणा में पवित्रता और पुण्यता के साथ कृपा और करुणा/दया का ऐसा अविभाज्य सम्बन्ध है कि उसे एक स्वयंसिद्ध सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है। और भक्त हृदय से प्रार्थना कर उठता है :

सर्वमेतत् क्षमस्व जय जय करुणाब्धे ...
श्रीशंकराचार्यकृत शिवापराधक्षमापन स्तोत्र १८.६६

अर्थात्, हे करुणासिन्धु, तुम्हारी जय हो, जय हो, मेरे समस्त पापों को क्षमा करें।

अपराधसहस्त्र संकुले पतित भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणगतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु॥
(स्वामी यतीश्वरानन्दकृत युनिवर्सल प्रेयर्स,
श्लोक संख्या २५०)

अर्थात्, सहस्रों अपराधकृत, मैं संसाररूपी भयंकर सागर में पतित हूँ। आपके शरणागत मुझ गतिहीन को कृपया स्वीकार कर अपना बना लीजिये।

—(क्रमशः)

●

आजादी

इम्फाल की रणभूमि में एक तरफ दिल्ली की हिन्दुस्तानी सेना थी, दूसरी तरफ नेताजी की आजाद हिंद सेना। दोनों एक दूसरे को लालच में डालने की कोशिश कर रही थी। दोनों के बीच में कम ही अन्तर था। एक वृक्ष के पास आजाद हिन्द सेना का एक पोस्टर चिपकाया कि हमारे साथ हो जाओ और अपने देश की आजादी के लिए लड़ो।

दिल्ली की अंग्रेज सेना ने उसका जवाब इस तरह दिया कि तुम लोग जापान के गुलाम हो, नमक हराम हो, खाने के लिए मरते हो, तो इधर आ जाओ। तुम्हें खाना मिलेगा।

नेता जी सुभाष बाबू की सेना ने इसका जवाब दिया कि गुलामी के 'घी' और 'आँटे' से आजादी की घास ज्यादा अच्छी है।

—गीता

बिटिया के बोल

(श्री अचिंत्य कुमार सेनगुप्त के एक लेख का सार)

"कौन है रे ?" उस विशाल निर्जन मैदान में सांझ के गहराते अंधेरे में एक कड़क रूखी आवाज गरज उठी और दूर-दूर तक गूंज गयी। उस डरावनी चुनौती से मानो आकाश के तारे भी सिहर उठे। वह आवाज बाग्दी डाकू की थी।

"मैं तुम्हारी बिटिया हूँ," एक कोमल स्निग्ध आवाज ने निर्भय उत्तर दिया।

"मेरी बिटिया ?"...डाकू अचंभे में पड़ गया। इस सुनसान ऊसर मैदान में मेरी यह कौन-सी बिटिया निकल आयी ? यह सोचते हुए उसने उस कोमल स्वर की दिशा में कदम बढ़ाये।

श्रीरामकृष्ण परमहंस की सहधर्मिणी शारदामणि देवी अपने पति के पास दक्षिणश्वर जा रही थीं। रास्ता बहुत बीहड़ और लंबा था। पांव-पांव चलना था। संयोग से गांव की कुछ महिलाएं गंगा-स्नान को जा रही थी; उन्हीं का साथ था।

कामारपुकुर से आरामबाग तक आठ मील का रास्ता था। और उसके आगे था तेलोभेलों का भयानक और बदनाम मैदान-पूरे दस मील लंबा। दिन रहते उसे पार कर लिया तब तो तारकेश्वर के दर्शन; वरना इस जीवन में फिर सूर्य के दर्शनों का भी भरोसा नहीं। मैदान पर डाकुओं का साम्राज्य था। 'सो सूर्यास्त के बाद तेलाभेलो में कदम रखने का दुःसाहस कोई नहीं करता था।

इसीलिए स्त्रियों की वह टोली इस प्रयत्न में थी कि दिन डूबने से पहले ही किसी तरह मैदान के पार पहुँच जाएं। परंतु मीलों पैदल चलने से शारदामणि एकदम थक गयी थीं और सबके साथ कदम मिलाकर चल नहीं पा रही थीं। बार-बार पिछड़ जाती थी। साथ की स्त्रियां बार-बार उलाहना दे रही थीं--"अरी, जल्दी-जल्दी चलेगी या पड़ी रहेगी ? क्या तेरे लिए हम सबको डाकुओं के हाथ जान देनी पड़ेगी ?"

अंत में शारदामणि ने कह दिया—"तुम लोग जाओ मेरे लिए मत रूको। हो सका तो मैं पीछे-पीछे आ जाऊंगी। अगर चाहो तो तारकेश्वर की धर्मशाला में मेरी राह देखना।" इस पर सब औरतें उन्हें पीछे छोड़कर तेजी से आगे बढ़ गयीं। तरूणी शारदामणि जैसे-तैसे चलती रहीं। इसी के कुछ समय बाद उन्हें सुनाई पड़ी थी डाकू की वह कड़क आवाज, जिसके उत्तर में उन्होंने अपने को उसकी "बिटिया" बताया था।

डाकू कुछ निकट आया। उसने शारदामणि को निहारा। कोमल युवा मुखड़ा-थकावट के बावजूद प्रसन्न, शांत। डाकू खड़ा-खड़ा सोचने लगा। "मैं तुम्हारी बिटिया" इन तीन शब्दों ने उसके जड़ भावशून्य हृदय को एकाएक झंकृत कर दिया था। वह दो कदम और निकट आ गया।

डरावनी सूरत। सिर पर लम्बे रूखे बाल। हाथ में लम्बी मजबूत लाठी। पर शारदामणि डरीं नहीं। बल्कि बड़ी आत्मीयता से, जैसे किसी निकट परिचय के व्यक्ति के साथ बात कर रही हों इस तरह बोलीं—" जा रही थी दक्षिणश्वर, तुम्हारे

जमाई के पास। साथ की औरतें मुझे छोड़कर आगे चली गयीं। अगर तुम आगे पहुंचा दो तो...'

'कहां रहता है जमाई? क्या करता है?' डाकू ने जरा नरम आवाज में पूछा।

"दक्षिणेश्वर में रानी रासमणि के कालीमंदिर में रहते हैं, वही पुजारी हैं।

इस बीच एक नारी-आकृति भी अंधेरे में से निकल कर पास आ गयी थी। वह थी डाकू की पत्नी। उसके हाथों को अपनी हथेलियों में लेकर शारदामणि बड़े लाड़ से कहने लगीं—"मैं तुम्हारी बिटिया शारदा हूँ। अब मुझे डर किस बात का! माँ-बाप दोनों मिल गये। मेरी विपदा दूर हो गयी।"

रक्षक के भक्षक बनने की बातें बहुत सुनी जाती हैं; पर भक्षक का रक्षक बनना बिरले ही सूनने में आता है। डाकू-दंपति शारदामणि को अपने संग ले गये। जरा दूर एक पेड़ था। उसके नीचे बैठकर डाक-पत्नी ने अपनी साड़ी के छोर में बन्धी पोटली में से निकालकर शारदामणि को चने-कुरमुरे खिलाये। फिर एक कपड़ा बिछाकर उन्हें बड़े प्यार से अपने पास सुलाया, जैसे वे नन्हीं बच्ची हों। लाठी हाथ में लेकर डाकू रात-भर पहरा देता रहा।

दूसरे दिन सवेरे तीनों तारकेश्वर की ओर चल पड़े। तारकेश्वर पहुँचकर डाकू-पत्नी अपने पति से बोली—"रात-भर मेरी बिटिया ने कुछ नहीं खाया है। जाओ, तारकेश्वरजी को प्रसाद चढ़ाकर हाट से चावल-सब्जी खरीद लाओ। बिटिया को जरा ठीक से भोजन तो करा दूँ।"

पूजा के बाद अनाज-सब्जी आयी। डाकू-पत्नी ने खिचड़ी और सब्जी बनायी। मातृहृदय का सारा प्रेम घुल गया था उस भोजन में। उसके स्वाद का क्या कहना! शारदामणि ने बड़े चाव से माँग-माँगकर भर-पेट भोजन किया। उसके बाद खुद भी खा-पीकर डाकू-दंपति उन्हें धर्मशाला में उनकी संगिनियों के पास ले गये।

"अरी, तू जिंदा है! ये लोग कौन हैं तेरे साथ?" सब स्त्रियाँ विस्मय से बोल उठीं एक साथ।

"ये मेरी माँ और बाबा हैं। तेलोभेलो के मैदान में ये न मिल गये होते तो न जाने मेरा क्या हाल हुआ होता!"

शारदामणि को उन स्त्रियों के हवाले करके लौटते हुए डाकू-दंपति भावना से विह्वल हो उठे—मानो विवाह के बाद बिटिया को विदा कर रहे हों! शारदामणि भी रो पड़ीं।

जब दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण ने सारी कथा सुनी तो बोले—"वह डाकू नहीं था, स्वयं नारायण थे। क्या डाकू में नारायण नहीं बसते? क्या हम सिर्फ उसका डाकूपन देखेंगे, उसका पितृत्व नहीं देखेंगे? हम उसकी निठुराई ही देखेंगे, उसमें छिपी ममता नहीं देखेंगे? डाकू में भी नारायण निरंतर निवास करते हैं। अगर हमें उन्हें पुकारना नहीं आता तो इसमें दोष किसका है? हम ही तो उसके नारायणत्व की उपेक्षा करके उसके डाकूपन को मजबूत करते हैं।"

विज्ञान और मानवीय मूल्य (२)

—श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज
उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और मिशन

२. समस्त मूल्यों का स्रोत मानव न कि बाह्य प्रकृति

परन्तु मनुष्य बिना मूल्यों के नहीं रह सकता है। हम उनकी खोज कहाँ करेंगे? भारत ने युगों पूर्व खोज निकाला है कि मनुष्य समस्त मूल्यों का स्रोत है, न कि बाह्य प्रकृति। यही कारण है कि धर्म के विषय को फिर से समझने की आवश्यकता है जो एक विज्ञान के रूप में मानव प्रकृति की गहनता के विज्ञान का अध्ययन है। अभी हाल के यूरोपीय इतिहास में जिसे अप्रांसगिक समझा गया था उसे पुनः वापस लाया जा रहा है। परन्तु एक सिद्धांत या मत के रूप में नहीं, अपितु, मानव-व्यक्तित्व की गहराई में, वैज्ञानिक खोज द्वारा आध्यात्मिक अनुभूति के रूप में, मूल्यों के स्रोत के रूप में। इसलिए, कुछ पाश्चात्य वैज्ञानिक भारत की ओर मुड़ते हैं, वे उपनिषदों का अध्ययन करते हैं, वे योग का अध्ययन करते हैं, क्योंकि उनमें वे धर्म के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण पाते हैं। यही हमारे देश की महान बिरासत है। भारत में हमें स्वयं को भारतीय अनुभव से उत्पन्न इस अद्भुत सत्य में पुनः शिक्षित करना है कि भौतिक विज्ञान और धर्म में, एक विज्ञान और अन्य विज्ञान में कोई विरोध नहीं है। भौतिकी के विज्ञान एवं अति भौतिकी के विज्ञान में, एक दूसरे के साथ न कोई विरोध है और न हो सकता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि रसायन शास्त्र एवं भौतिक शास्त्र एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। ये एक सम्पूर्ण विज्ञान जिसे भौतिक विज्ञान कहते हैं के विभिन्न भाग हैं। उसी प्रकार बाह्य भौतिक प्रकृति का विज्ञान तथा आन्तरिक मानव प्रकृति का विज्ञान एक दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि समग्र सत्य के विज्ञान के अन्तर्गत हैं।

प्रत्येक भारतीय को आज हमारी राष्ट्रीय विरासत, भौतिक विज्ञान और धर्म विज्ञान के समन्वय के सत्य को समझना ही चाहिये। इस विशिष्ट प्रश्न पर, हम को हमारे निजी ऐतिहासिक अनुभव पर आधारित, अपनी निजी राष्ट्रीय विरासत पर आधारित कभी भी शिक्षा नहीं मिली। इन समस्याओं पर हमारी स्वयं की राष्ट्रीय पद्धति की उपेक्षा कर हमने बहुत बुरा किया है। मूल रूप से जिन शब्दों का प्रयोग किया था वे ये—विज्ञान और धर्म, परन्तु चूँकि पाश्चात्य अनुभवों के अनुसार और साथ ही हमारे स्वयं के आधुनिक भारतीय अनुभव के अनुसार धर्म शब्द का अर्थ असहिष्णुता, अत्याचार एवं हिंसा के स्रोत के रूप में दूषित हो गया है इसलिये विचारक एवं लेखक आज "मानवीय मूल्यों" शब्द का प्रयोग करते हैं। कुछ सप्ताह पूर्व ही भारतीय विद्या-भवन द्वारा बम्बई में आयोजित एक सभा में उसके प्रकल्प-महात्मा गाँधी विज्ञान एवं अध्यात्म केन्द्र, बंगलोर पर विचार करने मुझे बुलाया गया था जिसके लिए गांधी जी तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के सहायक प्रख्यात जमनालाल बजाज के सुपुत्र रामकृष्ण बजाज ने

४० एकड़ का एक भूखण्ड तथा ५० लाख रुपया प्रदान किया है। परन्तु इस भय से कि कहीं हमारे अधिकांश वैज्ञानिक "अध्यात्म" शब्द को भूतविद्या आदि समझकर पसन्द न करें तथा ऐसे ही सब लोगों के लिए प्रकल्प को रूचिकर बनाने के लिए सभा ने "मानवीय मूल्य" शब्द ग्रहण किया। इस प्रकार "विज्ञान एवं मानवीय मूल्य" नाम रखा गया। परन्तु प्रकल्प के आलेख में अध्यात्म शब्द आता ही हैं।

ये मानवीय मूल्य क्या हैं ? ये सभी आध्यात्मिक मूल्य हैं। सभी मानवीय मूल्य आध्यात्मिक मूल्य हैं। वे बाहर जमीन, बादलों, वृक्षों या यन्त्रों से नहीं आते। वे मानव चेतना की गहराई से आते हैं।

परन्तु हमारे बहुत से वैज्ञानिक इस विचार को स्वीकार नहीं करते।" वे अभी भी प्राश्चात्य अनुभव के प्रभाव में है, एवं संस्कृत न जानने के कारण वे उपनिषदों में धर्म के प्रति अपने ही देश की वैज्ञानिक पद्धति के प्रति अनभिज्ञ हैं। परन्तु, मुझे विश्वास है कि कालक्रम में वे समझ जायेगें कि इस देश में, धर्म के प्रति हमारा दृष्टिकोण कभी ऐसा नहीं रहा कि उसकी खोज समाप्त हो गयी, या यह कोई सिद्धांत या मत है जिस पर कोई जिज्ञासा प्रकट नहीं की जा सके केवल मान लिया जाये भारत में जिज्ञासा धर्म का एक अनिवार्य अंग रहा है। उपनिषदों को पढ़िये, बुद्ध को पढ़िये, शंकराचार्य का अध्ययन कीजिये, सर्वत्र जिज्ञासा और अनुभव पर बल दिया गया है। श्री रामकृष्ण में यह जिज्ञासु भाव भारत में धर्म के अभिन्न अंग के रूप में आप प्रखर रूप में पाते हैं। रामकृष्ण ने अपने शिष्य नरेन्द्र-भावी विवेकानन्द से कहा, "मुझे वैसे ही परखो जैसे कि एक टकसाल वाला सिक्कों को परखता है' ये श्रीरामकृष्ण के स्वयं के शब्द हैं। उपनिषदों से लेकर श्री रामकृष्ण तक मुक्ति, आध्यात्मिक विकास तथा मानव की परिपूर्णता की ओर ले जाने वाली धर्म के विज्ञान की यह एक अटूट परम्परा है। आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित होता हुआ मानव, स्वयं में सदा विद्यमान दिव्य अंश को अभिव्यक्त करता हुआ नर या नारी—यह कितना अद्भुत सत्य है ! यदि आप किसी को अत्यन्त करूणावान, अत्यन्त दयालु देखें तो समझें कि वह आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित हो गया है। यह किस प्रकार का विकास है ? निश्चय ही यह उसके शरीर भार में अधिकाधिक वृद्धि करने वाला शारीरिक विकास तो नहीं है, यह केवल बौद्धिक विकास और विभिन्न विषयों की जानकारी एकत्रित करना भी नहीं है। मानव विकास का तीसरा आयाम है—आध्यात्मिक-आयाम में विकास। गत शताब्दी में, इस महान नगरी में पन्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर हुए थे। उनमें क्या महानता थी ? उनका शरीर स्वस्थ था तथा मस्तिष्क तेजस्वी था; उन्हें विद्यासागर कहा गया, परन्तु उनमें और भी कुछ था। जैसा कि श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा था—तुम केवल विद्यासागर नहीं हो अपितु दयासागर भी हो। यह उन्होंने कैसे प्राप्त किया ? वे अपने शारीरिक आयाम तथा बौद्धिक आयाम के परे चले गये थे। उनके पाण्डित्य की अपेक्षा उनकी करुणा कहीं अधिक थी। अतः किसी प्रकार की मानवीय महानता जो मधुर मानवीय सम्बन्धों के रूप में प्रकट होती है इस आध्यात्मिक विकास के सत्य को उजागर करेगी। मानवीय प्रकृति का यह एक सत्य है, यह कुछ लोगों का यथार्थ हैं तथा सभी की संभावना हैं। (क्रमशः)

अनुवादक : डॉ० सुरेशचन्द्र शर्मा
ग्वालियर

प्रबन्ध-व्यवस्था में अद्वैत दृष्टि

—डॉ० ओंकार सक्सेना
(जयपुर)

स्वामी रंगनाथानन्द द्वारा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द युवा सम्मेलन जयपुर में सम्मिलित होने से पूर्व, २६ सितम्बर, १९८० सायं नई दिल्ली के फिक्की आडिटोरियम में प्रदत्त व्याख्यान 'प्रबन्ध व्यवस्था में मानवीय मूल्य' सभी उत्तरदायित्वपूर्ण स्वतंत्र नागरिकों के लिए महत्व रखता है।

कोई भी राष्ट्र तब तक न तो महान् बन सकता है और न ही समृद्ध हो सकता है जब तक उनके निवासी आत्म-अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना तथा परिश्रम, कुशलता और सहयोग से कार्य करने की क्षमता और इच्छा का अपने-अपने भीतर विकास नहीं करते। स्वामी विवेकानन्द द्वारा मैसूर महाराजा को लिखे गए एक पत्र में भी इसी प्रकार के प्रेरणात्मक विचारों का समावेश है, "यह जीवन बहुत छोटा है : संसार का दिखावा अनित्य परन्तु दूसरों के लिए जीवित रहने वाला वस्तुतः जीवित है। शेष लोग जिन्दा कम और मरे हुए अधिक हैं।"

शिक्षा, आत्म-अनुशासन परिश्रम व सहयोग तथा संवेदनशीलता आधुनिक प्रगतिशील प्रजातंत्र में विकास के मुख्य माध्यम हैं। जिस अनुपात में जनसमुदाय शिक्षित होगा उसी अनुपात में राष्ट्र उन्नति करेगा। शिक्षा शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास की पूर्वापेक्षा है तथा भौतिक संपदा एवं बुद्धि-वैभव की प्राप्ति का साधन है। स्वामी विवेकानन्द ने लाहौर उद्बोधन में सर्वव्यापक तत्व की एकता और अद्वैतवाद की दृष्टि को राष्ट्रीय, व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन में व्यावहारिक बनाने की आवश्यकता पर बल दिया था। अद्वैत को आध्यात्मिक धरातल से व्यावहारिक धरातल पर लाना अथवा तपस्वियों से जनसाधारण में पहुँचाना शुद्ध विज्ञान को व्यावहारिक विज्ञान में परिणत करने के समान है। लोकाचार को अद्वैत ज्ञान से प्रणोदित कर लोगों को निष्ठावान् बनाने की आवश्यकता है।

स्वामी रंगनाथानंद ने कहा, "सरस्वती और लक्ष्मी का वही सम्बन्ध है जो शुद्ध विज्ञान और व्यावहारिक विज्ञान का है तथा मानव के समग्र कल्याण को प्राप्त करने के लिए दोनों ही आवश्यक है। आधुनिक पश्चिमी इतिहास हमें यह सत्य सिखाता है कि दोनों देवियां एक दूसरे को प्रेम करने वाली बहनें हैं और वैज्ञानिक अनुसंधान तथा ज्ञान अर्जन और वितरण द्वारा पहले सरस्वती का पूजन किया जाता है बाद में मानव विकास और कल्याण के सभी क्षेत्रों में ज्ञान के प्रयोग द्वारा लक्ष्मी का पूजन किया जाता है।"

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

(जहाँ कहीं योगेश्वर कृष्ण तथा धनुर्धारी अर्जुन हैं वहाँ (उस समाज में) सम्पति, विजय, सामान्य जन का कल्याण, स्थिर न्याय और नैतिक भावना हमेशा रहेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।)

वर्तमान संदर्भ में गीता के इस समापन श्लोक का महत्व समझाकर उसे आचरण में उतारने की प्रेरणा देते हुए स्वामी रंगनाथानन्द ने कहा, "इस श्लोक में समग्र मानव-कल्याण के लिए प्रत्येक व्यक्ति में आवश्यक दो शक्तियों के समन्वय का उल्लेख है– इनमें से पहली शक्ति योग की है जो सही दृष्टि, शान्त आध्यात्मिकता की शक्ति है जिसके प्रतिनिधि श्रीकृष्ण हैं जिन्होंने महाभारत युद्ध में वस्तुतः भाग न लेकर अर्जुन को मात्र ऋषियों की भाँति मार्गदर्शन प्रदान किया था। दूसरी शक्ति गहन और कुशल कर्म की है जिसके प्रतिनिधि कर्म के नायक अर्जुन हैं। यही प्रत्येक नागरिक के भीतर चिन्तन और कर्म, सही दृष्टि और उसके कार्यान्वयन का समन्वय है। इसे गीता तथा चीन के ताओवाद ने, "भीतर से ऋषि और बाहर से सम्राट" होने की स्थिति कहा और हर्बर्ट स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक 'स्टडी ऑफ सोशियोलोजी' में इसे, "जन कल्याण की शक्ति का दार्शनिक शान्ति से समन्वय कहा है।" यही सच्ची शिक्षा है। लोग इस शिक्षा को जब प्राप्त कर लेंगे तो सारी प्रबन्ध व्यवस्था और समूचा प्रशासन कार्य कुशलता के उच्चतम स्तर पर पहुँच जायेगा। भगवद् गीता के इसी आशय की गूंज जार्ज बर्नार्ड शॉ के प्रायः उद्धृत वाक्य में भी मिलती है, "जीवन का वास्तविक आनन्द यही है कि जिस उद्देश्य को आप महान समझते हैं, उसके लिए आपका उपयोग किया जाए, आप प्रकृति की एक शक्ति बने न कि रोगों और व्यथाओं से युक्त ऐसा मिट्टी का ढेला जिसे हमेशा यही शिकायत रहती है कि उसे प्रसन्न रखने के लिए संसार प्रयास नहीं करता।"

अब मात्रात्मक विस्तार से गुणात्मक विस्तार की ओर जाना है और सभी विकासशील संस्थानों के कार्य-कलाप में गुणात्मक अभिवृद्धि मानव मूल्यों के समावेश द्वारा करनी होगी। स्वामी रंगनाथानन्द ने कहा "इन मानव-मूल्यों का जन्म भवनों और मशीनों, नियमों और कानून अथवा संगठनों और कार्य प्रणालियों से नहीं बल्कि मानव-व्यक्तित्व की गहराइयों में से होता है।"

अनिश्वरवादी चिन्तक बर्ट्रेण्ड रसल ने भी ऐसी ही बात कही है, "मशीन शैतान का आधुनिक रूप है और इसकी पूजा आधुनिक पैशाचिकता है। चाहे प्रत्येक वस्तु यांत्रिक हो जाये परन्तु जीवन मूल्य यांत्रिक नहीं हो सकते और यह एक ऐसी बात है जो किसी भी राजनीतिक दार्शनिक को नहीं भूलनी चाहिए।" स्वामी विवेकानन्द ने भी सभी सण्डे टाइम्स के संवाददाता के समक्ष इसी प्रकार के विचार प्रकट किये थे, "हमें यह बात स्वीकार करनी होगी कि कानून सरकार और राजनीति किसी भी दृष्टि से अन्तिम लक्ष्य नहीं है। इनसे परे भी एक ऐसा लक्ष्य है जहाँ कानून की आवश्यकता नहीं है। सभी महान् धर्माचार्यों ने एक ही उपदेश दिया है। ईसा ने देखा कि कानून जीवन का आधार नहीं है तथा नैतिकता और शुद्ध आचरण ही एक-मात्र शक्ति है।" इन जीवन-मूल्यों के शक्ति स्रोत की ओर संकेत करते हुए स्वामी रंगनाथानन्द ने कहा, "जीवन-मूल्य मानवीय अवस्था के विकास की ही उपज है और क्योंकि वे मनुष्य की भीतरी आध्यात्मिक प्रकृति से उत्पन्न होते हैं, इसलिए उनकी प्रकृति आध्यात्मिक होती है।"

आध्यात्मिक दर्शन से प्रेरित रिचर्ड टेनर पास्कल और एंथनी जीरथास द्वारा लिखित 'दि आर्ट ऑफ जेप्नीज मैनेजमेंट' पुस्तक की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए स्वामी रंगनाथानन्द ने जापानी प्रबंध व्यवस्था में आध्यात्मिक मूल्यों के समावेश को भारत की देन कहा है। जापानी 'मात्सुशिता इलैक्ट्रिक कम्पनी' की चर्चा करते हुए इन लेखकों ने कहा है, "एक कम्पनी के क्रियाकलाप के वर्णन में 'आध्यात्मिक' शब्द विजातीय है परन्तु मात्सुशिता

दर्शन के पीछे जो दृढ़ विश्वास कार्य कर रहा है उसे समझने के लिए कोई और शब्द हो भी नहीं सकता।

मात्सुशिता कम्पनी जिन वस्तुओं का उत्पादन करती है उनसे भी परे मात्सुशिता दर्शन एक सार्थक आधार प्रस्तुत करता है। जापान में मात्सुशिता ऐसी पहली कम्पनी थी जिसका अपना जीवन-मूल्यों का एक गीत था और जीवन-मूल्यों सम्बन्धी आचरण संहिता थी। एक उच्च अधिकारी का कहना है, 'पश्चिम वालों को यह मूर्खतापूर्ण लगता है, परन्तु प्रत्येक सुबह ८ ०० बजे जापान भर में ८७,००० लोग जीवन-मूल्यों की आचरण संहिता का मिलकर पाठ और गान करते हैं। यह ऐसा है मानो 'हम सब मिलकर एक समुदाय हैं।' मात्सुशिता ने इस बात का पूर्वानुमान लगा लिया था कि जीवनभर के संगठनात्मक अनुभव का चरित्र पर अमिट प्रभाव पड़ता है। उनके विचार में यह सोचा भी नहीं जा सकता था कि हमारे जाग्रत दैनिक समय में से जिस कार्य में हमारा कम से कम आधा समय बीता है उसकी महत्वपूर्ण भूमिका को नकार दिया जाए। अत: इस क्रम का एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व यह था कि कर्मचारियों के भीतरी व्यक्तित्व का विकास करें।

इस उत्तरदायित्व को पूरा करने का सर्वश्रेष्ठ ढंग यह था कि "कम्पनी को समाज और व्यक्ति के साथ जोड़ दिया जाये। ऐसा करने के लिए इस बात पर जोर दिया जाना था कि प्रबन्ध-व्यवस्था मानव का मात्र उपयोग करने वाली न रहकर चरित्र का प्रशिक्षण देनेवाली और विकास करने वाली बने।" अत: समर्पित भावनामय इन सात आध्यात्मिक मूल्यों का महत्वपूर्ण आधार स्थापित किया गया— (१) उद्योग के माध्यम से राष्ट्र सेवा (२) निष्पक्षता (३) सामंजस्य और सहयोग (४) उन्नति के लिए संघर्ष (५) उदारता और नम्रता (६) अनुकूलता और अपनापन (७) कृतज्ञता। इस पुस्तक के लेखकों ने प्रारम्भ में कहा, "मनुष्य अपने साधनों से उतना सीमित नहीं होता जितना अपनी दृष्टि।" तथा समापन में यह चेतावनी दी, "हमारा कार्य अन्धानुकरण करना नहीं है वरन् तात्विक दृष्टि से विकास करना है।" वर्तमान भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्वामी रंगनाथानन्द कहते हैं, "इस विषय में सोचने पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि हम में किसी प्रमुख तत्व की कमी है। वह प्रमुख तत्व है प्रशिक्षित और अनुशासित तथा समाजोन्मुख मन और हृदय। हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र को इस प्रमुख खोई हुई कड़ी पर ध्यान देना होगा और अपनी शिक्षा, अपने धर्म और अन्त: मानव सम्बन्ध में इसे स्थान देना होगा। आत्मानुशासन के बिना कोई भी राष्ट्र महान नहीं बन सकता तथा स्वतंत्र मनुष्य की पहचान है आत्मानुशासन और गुलाम की पहचान है अनुशासनहीनता।'

आध्यात्मिक एकता की अद्वैत दृष्टि के मौलिक भारतीय दर्शन को व्यावहारिक आचरण में उतार कर प्रबन्ध-व्यवस्था एवं अनुशासन करने की आवश्यकता पर बल देते हुए स्वामी रंगनाथानन्द ने कहा, "प्रबन्धकों से लेकर चपरासियों तक सभी कर्मचारी दिन का कार्य प्रारम्भ करने से पहले इकट्ठे होकर अथवा छोटे-छोटे समूहों में बैठें और पांच-दस मिनट तक मौन रहकर ध्यान की अवस्था में रहें तथा परमात्मा का इस रूप में चिन्तन करें कि सभी प्राणियों के भीतर रहने वाला एक ही तत्व है और अपने कार्य के माध्यम से सभी प्राणियों की सेवा करते हुए अपना जीवन और कार्य समर्पित करने का विचार करें।"

"मेरी आत्मा ही मेरा सर्वोच्च आदर्श"

—मोहन सिंह मनराल
सुरईखेत, अल्मोड़ा (उ० प्र०)

'सब कुछ आत्मा की ओर'

स्वामी विवेकानन्दजी के सम्बन्ध में विचार करने पर हमें उनके गुरुदेव श्रीरामकृष्ण परमहंस की गिरगिट वाली कहानी स्मरण हो आती है जिसका रंग सदा बदलता रहता है। कभी तो वह किसी भी रंग का नहीं रहता। स्वामीजी पर गहराई से चिन्तन करने में हम उन्हें भी विविध रूपों में रंगे पाते हैं। जो जिधर से देखता है उसे उनका वही रूप भाने लगता है। कभी हम उन्हें कर्म क चर्चा में निरत पाते हैं तो लगता है कर्म ही सर्वोच्च आदर्श है बाकी सब गौण हैं। ठीक यही बात ज्ञान, योग, ध्यान व भक्ति के सम्बन्ध में भी लगती है। जो जहाँ से भी देखता है उन्हें पूर्ण पाता है। पूर्ण से पूर्ण घटाकर भी पूर्ण बने रहते हैं वे। मगर कभी-कभी वे हमें इनमें से किसी भी रूप में नहीं नजर आते हैं। मानो क्षणभर के लिए सब-कुछ उतारकर फेंक देते हैं और अपने गुरुदेव की भाँति माँ, माँ रटने लगते हैं। वह भी उनका रूप है।

यदि सूक्ष्म रूप से ध्यान चिन्तन किया जाय तो हम पायेंगे कि वे सभी बातों को एक केन्द्र की ओर खींच ले जाते हैं, और वह केन्द्र है आत्मा। उनके विचारों का प्रवाह इसी केन्द्र की ओर प्रवाहित होता है और किसी भी धारा से बहने वाला राही यदि ठीक-ठीक सत्य को पकड़े रहे तो इसी लक्ष्य की ओर स्वयं का खिचाव पाता है। वे सेवा, ज्ञान, कर्म-धर्म, भक्ति व शक्ति को आत्मा से संयुक्त कर बाहर निकालते हैं और फिर आत्मा में ही डुबो देते हैं। वे जीवन की उच्चतर अवस्था की ओर अग्रसर होने के लिए पूरी शक्ति लगाकर हमारा मार्गदर्शन करते हैं। आइये इन्हीं बातों पर ध्यान केन्द्रित करें।

हम स्वयं अपने अध्ययन के विषय हैं

स्वामीजी साधना के प्रथम सोपान में सर्वप्रथम मानव को अपने शरीर को ही अध्ययन का विषय बनाने की सलाह देते हैं जिसका अर्थ है आत्मनिरीक्षण और नियन्त्रण। सबसे पहली आवश्यकता है हम स्वयं को ही अपने अध्ययन का विषय मानें और अपने अंग प्रत्यंगों पर नियंत्रण करना सीखें तथा उन्हें ज्ञान के क्षेत्र में ले आयें। वे कहते हैं—"सर्वप्रथम तो हमारा शरीर ही हमारे अध्ययन का विषय बनना चाहिए। हृदय यकृत आदि सभी प्रतिगामी हैं इन्हें ज्ञान के क्षेत्र में ले आओ, इन पर नियन्त्रण रखो ताकि इनका परिचालन तुम्हारी इच्छानुसार हो सके।"

दूसरा है अतिचेतन का उद्घाटन जो आवरणों से ढँका है। जो प्रकृति से आच्छादित है और जिसके उद्घाटन के साथ ही सारे रहस्य खुल जाते हैं। सत्य उद्घाटित हो जाता है और मानव सत्य-स्वरूप बन जाता है। इस सम्बन्ध में वे कहते हैं "यह अतिचेतन ही हमारे जीवन का लक्ष्य है। जब उस अवस्था की उपलब्धि हो जाती है तब मनुष्य दिव्य बन जाता है। मुक्त हो जाता है।"

अतः सर्वप्रथम है आदर्श का निर्धारण जो वास्तव में स्वयं ही निर्धारित है। उसी आदर्श की ओर वे हमें हर रास्ते से धकेल देना चाहते हैं क्योंकि हमारी निद्रा, प्रमाद, आलस्य भावुकता और दुर्बलता ही हमारी सबसे बड़ी बाधा बनकर हमें भयाक्रान्त करती है। तभी तो वे अपने हरेक उद्गार में कहते हैं उठो, जागो और जब तक लक्ष्य को प्राप्त न कर लो, चैन मत लो। आग में कूद पड़ो और अंधकार को चीरते हुए आगे बढ़ चलो। निरन्तर आगे। कौन गिरा परवाह मत करो। बस आगे ही बढ़ते रहो। आदर्श निर्धारित है और मंजिल तय है, बस चलने की आवश्यकता है। बिना चले वहाँ पहुँचना संभव नहीं। यदि हम न भी चलना चाहें तो भी हमारी प्रकृति हमें ऐसा नहीं करने देगी। हमें मुक्के मारकर, धक्के देकर मजबूर किया जायेगा और बिना चले हम रह नहीं सकेंगे। यही प्रकृति के साथ मानव का जाना-अनजाना संघर्ष है जो कभी भी रुकेगा नहीं। शरीर आयेगा जायेगा मगर यह संघर्ष समाप्त नहीं होगा। तब इसकी परवाह किये बिना क्यों न एक दिशा पकड़ ली जाय और उस निर्धारित लक्ष्य की ओर अपने ठहराव को तोड़ बढ़ लिया जाय जिसके बारे में स्वामीजी कहते हैं—

"मैं स्वयं मेरी आत्मा ही लक्ष्य है, अन्य और कुछ भी नहीं क्योंकि ऐसा क्या है जिसके साथ मेरी आत्मा की तुलना की जा सके? सुवर्ण की एक थैली क्या कभी मेरा आदर्श हो सकती है? कदापि नहीं। मेरी आत्मा ही मेरी सर्वोच्च आदर्श है। अपने प्रकृत स्वरूप की अनुभूति ही मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय है।" (वि० सा० ३।९६)

संघर्ष की आवश्यकता क्यों?

इसी लक्ष्य या आदर्श की ओर वे हमें धकेलना चाहते हैं: जगत के उपकार से हम अपना ही उपकार करते हैं। सेवा द्वारा हम स्वयं को ही शुद्ध करते हैं। जगत को हमारी सेवा की आवश्यकता नहीं है वह पूर्ण से निकला स्वयं में पूर्ण है। आवश्यकता हमें है स्वयं को बंधनों व आवरणों से मुक्त करने की। इसीलिए कर्तव्य व कर्म की आवश्यकता है। इसीलिए अनवरत संघर्ष करने की आवश्यकता है। वे इस बारे में कह रहे हैं—"संघर्ष एक बड़ा पाठ है। ध्यान रखो संघर्ष इस जीवन में बड़ा लाभदायक है। हम संघर्ष में से होकर ही अग्रसर होते हैं। नरक से होकर स्वर्ग, यही सदा का रास्ता है।" इस संघर्ष का परिणाम क्या होता है इस बारे में स्वामीजी आगे कहते हैं- "जब जीवात्मा परिस्थितियों का सामना करते हुए मृत्यु को प्राप्त होती है, जब मार्ग में इस प्रकार उसकी सहस्रों बार मृत्यु होने पर भी वह निर्भीकता से संघर्ष करती हुई आगे बढ़ती है और बढ़ती जाती है तब वह महान शक्तिशाली बन जाती है और उस आदर्श पर हँसती है जिसके लिये वह अभी तक संघर्ष कर रही थी क्योंकि वह जान लेती है कि वह स्वयं उस आदर्श से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।"

"इच्छा शक्ति व ध्यान"

इस आदर्शोपलब्धि हेतु वे इच्छाशक्ति व ध्यान को प्रमुख कारक स्वीकारते हैं। वे कहते हैं— ऐहिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए हम जितने प्रयत्न करते हैं, उससे सौ गुना अधिक प्रबल निश्चय हमारी महान साधना है।"

इसके उपरान्त है ध्यान का अभ्यास क्योंकि ध्यान एक ऐसी अवस्था है जहाँ आत्मा समस्त जड़ पदार्थों से स्वयं को मुक्त कर स्वयं के बारे में चिन्तन करते हैं। वे कहते हैं—"ध्यान ही एकमात्र असल वस्तु है। ध्यान करो। ध्यान ही सबसे महत्वपूर्ण है। मन की यह ध्यानावस्था आध्यात्मिक जीवन की निकटतम समीपता है। समस्त जड़ पदार्थों से मुक्त होकर आत्मा का अपने बारे में चिन्तन। आत्मा का यह अद्भुत संस्पर्श। यही हमारे दैनिक जीवन में एकमात्र ऐसा क्षण है जब हम किंचित भी पार्थिव नहीं रह जाते।"

हमारा खेल खत्म हुआ

इसी के साथ स्वयं को साक्षी रूप में देखना, आत्म रूप में देखना और यह समझना कि यह सारा खेल प्रभु ही खेल रहे हैं। आत्म साक्षात्कार का क्षण होता है। एक ऐसा क्षण जहाँ हम कह उठते हैं—मेरा खेल खत्म हुआ। इसी अनुभूति को शब्द देते हुए स्वामीजी ने कहा—"हमारे जीवन में भी ऐसे क्षण आते हैं जब हम अनुभव करते हैं कि हमारा खेल खतम हो गया और तब हम जगन्माता की ओर दौड़ जाना चाहते हैं। तब हमारी आँखों में यहाँ के अपने समस्त कार्यकलाप का कोई मूल्य नहीं रह जाता···समस्त जीवन उड़ते दृश्य सा जान पड़ता है। हम देखते हैं केवल एक असीम लय लहरी को किसी अज्ञात दिशा में बहते हुए बिना किसी छोर के बिना उद्देश्य के हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि हमारा खेल समाप्त हो चुका।"

यही हमारी आदर्शोपलब्धि है और इसका केन्द्र है हमारी आत्मा जिसकी ओर हमारी गति है और हमारा सारा प्रयास! काश हम इस आदर्श के लिये प्राणपण चेष्टा व प्रार्थना के सुयोग से जुड़ जायं। महान स्वामी हमारे आत्मरूप हैं उन्हें किसी भी रंग से, ढंग से या छोर से पकड़ने से हमारा प्रवाह आत्मा की ओर होने लगता है। उनका एक एक शब्द, एक एक अनुभूति हमें अपनी आत्मा से जोड़ देता है जो हमारा एकमात्र आदर्श है। बाँकी सारी हलचल इसी अभीष्ट के लिये है। उन्हें कहीं से भी पकड़ने और बहते चले जाने की आवश्यकता है बाँकी उनका आशीर्वाद सदा हमारे साथ है। जयस्वामीजी।

देवलोक

स्वामी अपूर्वानन्द

अनुवादक—स्वामी ज्ञानातीतानन्द

रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

नवम परिच्छेद

देहत्याग के एक सप्ताह के पहले स्वामीजी ने एक शिष्य को एक पंजिका लाने के लिए कहा। उन्होंने ध्यानपूर्वक पंजिका पत्ता उलट-उलट कर दिन देखा, ऐसा मालूम हुआ कि कसी कार्यविशेष के लिए शुभदिन देख रहे हैं। बाद में अपने घर में ही पंजिका रख दिया। उनके देहान्त के बाद सभी ने पंजिका देखने का अर्थ समझा था। देहत्याग के तीन दिन पहले सायंकाल मठ की जमीन में स्वामी प्रेमानन्द के साथ-साथ घूमते-घूमते बेलूड़ मठ में स्वामी जी के समाधि-मन्दिर के स्थान को दिखाकर कहा था : 'मेरा शरीर जाने पर यहाँ संस्कार करना।'

विज्ञान महाराज की सेवा में :

देहत्याग के बाद स्वामीजी का पवित्रदेह का उसी निर्दिष्ट स्थान में अग्निसंस्कार किया गया, एवं थोड़े समय के बाद ही स्वामी विज्ञानन्द से एक नक्शा बनवाकर राजा महाराज ने उसी समाधि स्थान पर पहले एक छोटा गर्भ मन्दिर निर्माण कराकर नित्य सेवा पूजादि की व्यवस्था की। बाद में १९१८ ई० पुनः हरिप्रसन्न महाराज की सहयोगिता से स्वामी जी के मन्दिर का काम धीरे-धीरे शुरू किया, एवं गर्भ मन्दिर के चारों ओर उसके ऊपर वर्तमान स्मृति मन्दिर निर्मित हुआ। अन्त में लगभग तीन-चार महीने विज्ञान महाराज बेलूड़ मठ में उपस्थित रहकर स्वामी जी के मन्दिर का निर्माण कार्य पूरा किया। उसी समय विज्ञान महाराज की सेवा करने का मुझे थोड़ा-थोड़ा अवसर मिला था। महापुरुष महाराज ने ही मुझे कह दिया था कि पेसन का जरा देखभाल करो। पूजनीय विज्ञान महाराज खूब स्वावलम्बी थे। वे प्रातराश पूरा करके आठ बजे के बाद ही एक कापी हाथ में लेकर, अपना झोला हाथ में लेकर स्वामी जी का मन्दिर का काम कराने जाते। एवं एक चेयर पर बैठ कर सायं पाँच बजे तक लगातार कामकाज देखते। काम का नुकसान होगा यह सोचकर वे दोपहर का खाना भी काम की जगह में बैठकर खाते थे। वे दोपहर में खूब कम खाते थे। एक साधू एक पात्र में भोजन ले जाकर उनको खिला आते। शाम को चाय भी इसी तरह पीते। उनकी कर्मनिष्ठा सभी के लिए अनुकरणीय थी। इसी कर्म के माध्यम से वे स्वामी जी की सेवा करते। पाँच बजे के बाद वे मठ में लौटकर एकबार स्नानघर जाते एवं बाकी समय घर का दरवाजा-खिड़की बन्द करके ध्यान करते। उस समय कोई भी उनके साथ मिल नहीं सकता था। रात्रि में भोग उतरने के बाद रात्रि का खाना एक थाले में सजाकर मैं उनको दे

आता था, वे चुपचाप बैठ कर खाते। उनके खाने का एक वैशिष्ट्य देखने योग्य था। खाने के समय वे बातचीत नहीं करते थे। जो दिया जाता वही चुपचाप खाते। उनका खाना देखकर राम प्रसाद का यह गाना याद आता, 'आहार करो मने करो आहुति दागो श्यामा मा के।' वे इस प्रकार खाते मानो किसी को खिला रहे हैं। कौन तरकारी कैसी हुई है पूछने पर कहते : 'अरे दादा, तुम दे गए थे मैंने खा लिया—कैसा हुआ था यह सब याद नहीं है।' मैं बीच-बीच में जाकर उनका बिस्तरा आदि ठीक कर देता था। वे खूब ध्यानप्रिय थे एवं सब समय एक उच्चचिन्ता लेकर रहते थे। जब भी उनके घर किसी काम से गया हूँ, उनको चेयर में बैठे ध्यानस्थ देखता। वे मठ में आने पर अधिकतर खोका महाराज के घर में ही रहते थे एवं ऊपर के बरान्डे से स्नानघर आते जाते। प्रातः काम में जाने के समय किसी-किसी दिन महापुरुषजी को प्रणाम कर जाते। वे प्रायः कहते, 'पेसन, तुम दोपहर में थोड़ा विश्राम करो, नहीं तो शरीर खराब हो जाएगा।' हरिप्रसन्न महाराज साथ-साथ कहते, 'नहीं महाराज, मेरा शरीर खब अच्छा है। आपके आशीर्वाद से मैं अच्छा हूँ, खूब आनन्द से हूँ।' वे काम के बीच-बीच में इलाहाबाद आश्रम में दो-चार दिन के लिए जाते। उस आश्रम का काम-काज का निर्देश देकर फिर मठ लौट आते।

स्वामी जी के समाधि-मन्दिर प्रतिष्ठा-दिवस में महापुरुषजी स्मृतिचारण :

स्वामीजी का समाधि-मन्दिर नाना प्रकार से वैशिष्ट्यपूर्ण। इस मन्दिर के दोतला में हिन्दू-धर्म के सभी सम्प्रदायों का सामान्य प्रतीक 'ॐकार' स्थापित। हरिप्रसन्न महाराज के साथ परामर्श करके मन्दिर का काम पूरा होने पर १९२४ ई० की २८ जनवरी स्वामीजी ६२वाँ जन्मतिथि में इस विराट स्मृति-मन्दिर के प्रतिष्ठा का दिन निश्चित हुआ। इस उपलक्ष में सारा दिन विविध याग यज्ञ, पूजा-पाठ, होम, भजन-कीर्तन एवं हजारों दरिद्र-नारायण सेवा का आयोजन हुआ था, एवं पुण्यक्षेत्र में विपुल जनता के सभक्ष महापुरुषजी ने इस 'ॐकार' मन्दिर की प्रतिष्ठा की। वे सारा दिन खूब कर्म व्यस्त थे एवं स्वामी जी के भाव में विभोर थे। इस दिन प्रसंगानुसार महापुरुषजी ने कहा था, 'स्वामीजी अभी भी बेलूड़ मठ में वास करते हैं। मैंने कई दिन उनको उनके घर में ध्यानस्थ देखा है, कभी देखा कि वे पैदल चल रहे हैं। उन्होंने अपने कंधे पर लाकर ठाकुर को यहाँ बैठाया है। ठाकुर जहाँ है, वहां माँ और स्वामी जी भी हैं और सभी पार्षदगण भी। ठाकुर पार्षदों के सिवाय रह नहीं सकते थे। उनके पार्षद भी देहत्याग के बाद उनके साथ इसी बेलूड़ में वास करते हैं इसीलिए तो मैं श्री श्री माँ के देहत्याग के बाद यहाँ उनकी पूजा और भोग की व्यवस्था किया है। पहले ठाकुर का एक सेर चावल का भोग होता था। माँ के देहत्याग के बाद भोग का चावल एक पाव बढ़ा दिया, और महाराज के देहत्याग के बाद और एक पाव बढ़ा दिया, अब डेढ़ सेर चावल का भोग होता है। इसी से ठाकुर, माँ और पार्षदों का सभी का भोग होता है। देहत्याग के कुछ दिन पहले एक दिन बाबूराम महाराज को साथ लेकर गंगा के किनारे घूमते-घूमते समाधि स्थान दिखाकर स्वामी जी ने उनको कहा था, "देहत्याग के बाद मेरे शरीर का दाह यहाँ करना। मैं मठ में ही रहूँगा।" यह सुनकर बाबूराम महाराज खूब दुःख प्रकाश कर बोले थे, "वह सब तुम क्या कहते हो, तुम ठीक हो जाओगे।" तब स्वामी जी का शरीर खूब खराब था, और उन्होंने मानो देहत्याग का संकल्प कर लिया था। कामकाज से उनका मन उठ गया था, केवल "माँ माँ" करते। ठाकुर

ने ही तो स्वामीजी को "माँ" नाम सिखाया था। वे तो पहले माँ काली को मानते नहीं थे। ठाकुर ने ही उनको "कालीघर" में भेजा था एवं उनको कहा था, "तुमको माँ का अनेक कार्य करना होगा।" इसीलिए तो माँ के कार्य में उन्होंने इतना परिश्रम किया था कि, कम उम्र में उनका शरीर चला गया। उन्होंने स्वयं को इसी माँ के कार्य में एक बार लीन कर दिया था। स्वामी जी को अभी भी कोई समझ नहीं सका। हमलोगों ने ही उनको कितना समझा है? स्वामी जी के नहीं आने से ठाकुर को लोग जान ही नहीं सकते थे।' इसी प्रकार उस दिन अनेक रात्रि पर्यन्त महापुरुष महाराज स्वामी जी की अनेक बातें बताते रहे, एवं दूसरे दिन से नवप्रतिष्ठित मन्दिर में आनुष्ठानिकभाव से पूजादि की व्यवस्था हुई।

इस उपलक्ष में विभिन्न शाखाकेन्द्र से बहुत साधु बेलूड़ मठ में एकत्र होकर प्रतिष्ठाकार्य सुसम्पन्न किया एवं बेलूड़ मठ में कई दिन तक चलने वाला उत्सव मुखरित हुआ। वर्तमान में यह मन्दिर स्वामी जी की विराट कीर्ति के प्रतीकरूप में गंगा के किनारे देश-विदेश के हजारों-हजार तीर्थयात्रियों के प्राणों में दिव्य अनुप्रेरणा ला रहा है।

राजा महाराज के स्मृति मन्दिर का शिलान्यास

श्रीरामकृष्ण संघ में राजा महाराज के विपुल अवदान की बात याद कर एवं महाराज के देह त्याग से श्रीरामकृष्ण-जगत में जो विराट शून्यता की सृष्टि हुई थी उसकी आंशिक पूर्णता के लिए राजा महाराज के देह त्याग के तुरन्त बाद ही महापुरुष के अन्तर में बेलूड़ मठ में महाराज के योग्य स्मृति-मन्दिर के निर्माण की इच्छा बलवती हुई। उन्होंने ठाकुर का आशीर्वाद लेकर महाराज के देह त्याग के थोड़े दिन बाद ही एक शुभ दिन श्रीमन्दिर का शिलान्यास करके मन्दिर का काम प्रारम्भ कर दिया, एवं जैसे देव प्रेरणा से मठ के प्रवीण सन्यासी स्वामी शंकरानन्द और स्वामी निर्वाणानन्द ने इस शुभ कर्म में आत्मनियोग किया।

हमलोगों ने प्रवीण लोगों के द्वारा सुना है कि, महाराज के देहत्याग के दूसरे दिन जब उनका पवित्र देह बलराम-मन्दिर से बेलूड़ मठ लाया गया, उसी समय महाराज का भावी समाधि-मन्दिर की परिकल्पना के विषय में प्रवीणों के साथ बातचीत करके महापुरुष महाराज ने उनके समाधि स्थान का निर्णय किया। तब गंगा के किनारे का यह अंश खूब असमान एवं जंगल से भरा था। महापुरुषजी के निर्देश से श्री श्रीमाँ के मन्दिर के पास का यह जंगलाकीर्ण स्थान ठाकुर के मानसपुत्र का समाधि स्थान निर्धारित हुआ। मन्दिर निर्माण कार्य के साथ ही साथ गंगा का किनारा साफ और भरा गया एवं मन्दिर रक्षा के लिए मन्दिर के तीन तरफ से घेर कर गंगा के किनारे पोस्ता (बांध) बनाया गया।

मन्दिर का वैशिष्ट्य

महाराज के मन्दिर का एक वैशिष्ट्य विशेष लक्षणीय है। महाराज के ठाकुर के मानसपुत्र, स्वामीजी –परिकल्पित्त नाट मन्दिर समेत ठाकुर के विराट मन्दिर का नक्शा बेलूड़ मठ में राक्षित था। वह स्मरण करके महाराज के समाधि- मन्दिर के निर्माण के समय महापुरुषजी ने बेलूढ़ मठ के प्रवीण

सन्यासियों के साथ परामर्श करके ठाकुर के मन्दिर का गर्भ मन्दिर महाराज के समाधि मन्दिर के नक्शा रूप में लेना निश्चित किया गया। वर्तमान में बेलूड़ मठ में महाराज के मन्दिर की ओर देखने से यह मन्दिर ठाकुर के मानसपुत्र के योग्य समाधि-मन्दिर की तरह लग कर दर्शकों के मन भक्ति का उद्वेग करता है।

मंदिर का द्वारोद्घाटन

मन्दिर का निर्माण कार्य जब तेजी से चल रहा था तब प्रायः प्रतिदिन ही महापुरुष महाराज वहाँ आकर काम काज देखते थे एवं स्वामी शंकरानन्द एवं स्वामी निर्वाणानन्द को उत्साहित करते। मन्दिर निर्माण समाप्त होने के बाद वाले माघ शुक्ला द्वितीया तिथि को (१९२४ ई० १ फरवरी वृहस्पतिवार) स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज के शुभ जन्मतिथि उत्सव के दिन विविध पूजानुष्ठान के बाद सैकड़ों सन्यासियों के बीच और भक्तों के बीच उच्च जयध्वनि के बीच, महापुरुषजी ने स्वामी ब्रह्मानन्द समाधि—मन्दिर का द्वार उद्घाटन करके महाराज की मनुष्य प्रमाण (बैठी) संगमरमर मूर्ति की प्रतिष्ठा किया। मूर्ति इतनी सुन्दर है कि, देखकर मालूम होता है कि महाराज जीवन्त बैठे हैं। मन्दिर के दो तला पर मठ घर से लाया हुआ महाराज का सब व्यवहृत वस्तु रखा गया एवं उसी दिन से इस मन्दिर में स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज की नित्य-पूजादि प्रवर्तित हुई। सारा दिन पूजा-पाठ, याग-यज्ञ, भजन-कीर्तन और दरिद्रनारायण सेवा में मठ का प्रांगण मुखरित हुआ। सन्ध्या के बाद मठवासी साधुओं ने महाराज के मन्दिर में उनके द्वारा प्रवर्तित "रामनाम संकीर्तन' का गान किया। महापुरुष महाराज सारे दिन खूब व्यस्त रहे। राजा महाराज के इस मन्दिर की प्रतिष्ठा करके उन्होंने खूब आनन्द प्रकाश करके कहा था : 'महाराज के देह त्याग से मठ मानों शून्य मालूम पड़ता। मठ की आध्यात्मिकता, यहाँ तक कि पेड़-पौध भी सूखे जा रहे थे। अब महाराज मठ में ही वास कर रहे हैं; मठ फिर जग जाएगा। जो लोग मन्दिर में महाराज का दर्शन करेंगे उनको भी महाराज आशीर्वाद देंगे, और मन्दिर में बैठ कर हमलोगों को भी देखेंगे। महाराज नहीं रहने से क्या मठ अच्छा लगता ?' इस दिन विभिन्न समय में महाराज के भाव से भावित होकर महापुरुषजी ने "अनेक बातें बताई थी। सारी बातें महाराज के प्रति उनके गम्भीर श्रद्धा का परिचायक थी। 'गुरुवत् गुरुपुत्रेषु'

—इस शास्त्रवाक्य के प्रति विश्वास के जीवन्त प्रतीक थे—महापुरुष महाराज :

स्वामी विवेकानन्द के अग्नि मन्त्र

मनुष्य का अध्ययन करो, मनुष्य ही जीवन्त काव्य है।

बड़े आदमी वे हैं, जो अपने हृदय के रक्त से दूसरों का रास्ता तैयार करते हैं।

वास्तव में महान् वही है, जिसका चरित्र सदैव और सब अवस्थाओं में महान तथा एकसम रहता है।

हमारी प्रथम और प्रधान आवश्यकता है—चरित्र गठन।

श्रेष्ठ कार्य में अनेक विघ्न होते हैं।

असफलता तो बिल्कुल स्वाभाविक है, यह मानव जीवन का सौन्दर्य है।

दूसरों पर दोष न मढ़ो। तुम जो कष्ट भोग रहे हो, उसके एकमात्र कारण तुम्हीं हो।

उठो, साहसी बनो। सब उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लो—याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो।

जिसमें आत्मविश्वास नहीं वही नास्तिक है।

तुम सब कुछ कर सकते हो, तुम सर्वशक्तिमान हो।

पहले एकान्त में बैठकर धर्मजीवन को अच्छी तरह गढ़ लेना होगा।

शान्त रहकर संचय करो और आध्यात्मिकता के 'डायनेमो' बन जाओ।

चिन्तन करना सीखो। नये विचारों को जन्म दो।

विचार बहुत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि जो कुछ हम सोचते हैं वह हो जाते हैं।

अपने विचारों को दूसरे में प्रचार करने के लिए जल्दी नहीं करनी चाहिए।

हमको चाहिए—हृदय और मस्तिष्क का समन्वय।

यदि हृदय और मस्तिष्क में मतभेद हो, तो हृदय का अनुगमन करो।

हमें ऐसे हृदय की आवश्यकता है जो समुद्र सा गम्भीर और आकाश सा उदार हो।

हृदय पूर्ण होने पर मुख से शब्द निकलते हैं, हृदय पूर्ण होने पर हाथ भी काम करते हैं।

हमें तीन वस्तुओं की आवश्यकता है: अनुभव करने के लिए हृदय की, कल्पना करने के लिए मस्तिष्क की, और काम करने के लिए हाथ की।

पृथ्वी की तरह सब कुछ सहन करने की शक्ति अर्जन करो।

पवित्रता, दृढ़ता और उद्यम—ये तीनों ही गुण मैं एक साथ चाहता हूँ।

गम्भीरता के साथ शिशुवत् सरलता को मिलाओ।

सबको अपने समान देखो। साम्य भाव ही मुक्त पुरुष का लक्षण है।

ढोंगी बनने से स्पष्टवादी नास्तिक होना अच्छा है।

उठो, जाओ और सम्पूर्ण रूप से निष्कपट हो जाओ।

भय दुर्बलता का चिह्न है।

कामना तथा स्वार्थ से ही भय की उत्पत्ति होती है।

संसार को यदि किसी एक धर्म की शिक्षा देनी हो, तो वह है 'निर्भीकता'।

वीर बनो, सर्वदा कहो, 'अभीः अभीः'—'मैं भयशून्य हूँ, मैं भयशून्य हूँ'।

दुर्बलता ही संसार में समस्त दुःखों का कारण है।

हम दुर्बलता के कारण ही चोरी-डकैती, झूठ-फरेब तथा इस प्रकार के अनेकानेक दुष्कर्म करते हैं।

दुनिया को मुझे बस इतना ही बताना है—बलवान बनो।

शक्ति की उच्चतम अभिव्यक्ति है—अपने को शान्त रखना और स्वयं अपने पैर परों खड़ा होना।

समग्र जीवन का एकमेव उद्देश्य है—शिक्षा।

सारी शिक्षा का ध्येय है—मनुष्य का विकास।

कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता, सब अन्दर ही है।

मन की एकाग्रता ही समस्त ज्ञान का उत्स है।

शिशु स्वयं ही शिक्षा लाभ करता है—तुम्हारा कर्तव्य है सुयोग देना और बाधा दूर करना।

किसी से ऐसा मत कहो कि 'तुम बुरे हो' वरन् उससे कहो—'तुम अच्छे हो, और भी अच्छे बनो'।

ज्ञानप्राप्ति का रहस्य है—सब वस्तुओं का सार-भाग ग्रहण करना।

मैं धर्म को शिक्षा का अन्तरतम अंग मानता हूँ।

सच्ची शिक्षा सर्वदा प्रकृति के सम्पर्क में रहने से ही प्राप्त होती है।

जो मनुष्य कहता है कि मुझे कुछ नहीं सीखना है, समझ लो कि वह मृत्यु की राह पर है।

जब मनुष्य देख पाता है कि जड़ जगत् में सुख का अन्वेषण व्यर्थ, तभी धर्म का आरम्भ होता है।

प्रत्यक्षानुभूति ही धर्म का सार है।

जहां पर बुद्धि-विचार का अन्त होता है, वहीं से धर्म का आरम्भ होता है।

धर्म विश्वास की नहीं, बल्कि होने और बनने की वस्तु है।

निःस्वार्थता ही धर्म की कसौटी है।

धर्म का मूल उद्देश्य है, मनुष्य को सुखी करना।

जो धर्म गरीबों का दुःख नहीं मिटाता, मनुष्य को देवता नहीं बनाता, वह भी क्या धर्म है?

वास्तव में सब धर्म एक ही 'चिरन्तन धर्म' के अभिन्न अंग हैं।

धर्मान्धों का कोई धर्म नहीं होता।

सम्प्रदाय अवश्य रहें, पर साम्प्रदायिकता दूर हो जाय।

प्रत्येक सम्प्रदाय एक एक महान् सत्य दिखा रहा है।

कामना असीम है, पर उसकी पूर्ति सीमित है।

भोग है लाख फनवाला साँप- इसे कुचलना होगा।

अज्ञान, भेदबुद्धि और वासना—ये तीनों ही मनुष्य जाति के दुःख के कारण हैं।

हम सुख के पीछे दौड़ते हैं और दुःख हमारा पीछा करता है।

सुख के प्रत्येक तोले के साथ सेर भर दुःख भी आता है।

जीवन क्षणस्थायी है, एक क्षणिक स्वप्न है, यौवन और सौन्दर्य नश्वर हैं।

किसी जड़ वस्तु को मूल्यवान मत समझो और उसमें आसक्त मत होओ।

सदैव मृत्यु का मनन करो।

निम्न को त्यागो, ताकि तुम्हें उच्च की प्राप्ति हो सके।

त्याग ही महाशक्ति है।

त्याग-तपस्या से ही जगत् की सृष्टि हुई है।

त्याग ही सारी आध्यात्मिकता का प्रथम सोपान है।

यदि बाहर से त्याग नहीं कर पाते, तो मन ही मन सब त्याग दो।

जीवन का रहस्य भोग नहीं है, अपितु अनुभव द्वारा शिक्षा प्राप्त करना है।

इन्द्रिय सुख को मानवता का चरम लक्ष्य मानना महज मूर्खता है, मानव-जीवन का लक्ष्य तो ज्ञान है।

विश्व में प्रत्येक वस्तु मुक्ति के लिए संघर्षरत है।

ऊपर की ओर देखना, ऊपर उठना तथा पूर्णता की खोज करना—इसे ही मोक्ष कहते हैं।

सर्वोच्च को ही खोजो, सदा सर्वोच्च को ही खोजो, क्योंकि सर्वोच्च में ही शाश्वत आनन्द है।

सत्य को जान लो और क्षण भर में तुम मुक्त हो जाओगे।

वास्तव में चरम सीमा तक पहुँचे बिना सत्य कभी सुखकर नहीं होता।

निरपेक्ष सत्य एक है, सापेक्ष सत्य अवश्य अनेक हो सकत हैं।

हमें असत्य से सत्य तक नहीं, वरन् सत्य से उच्चतर सत्य तक पहुँचना है।

सत्य जितना हो महान् होता है, उतना ही सहज बोधगम्य होता है।

एकमात्र ईश्वर ही सत्य है, एकमात्र आत्मा ही सत्य है और एकमात्र धर्म ही सत्य है।

आदर्श को नीचा करके हमें अपनी दुर्बलता का समर्थन नहीं करना चाहिए।

ज्ञान लाभ करने के लिए शास्त्र पढ़ने की बहुत जरूरत है।

जिसके हृदय की पुस्तक खुल चुकी है, उसे अन्य किसी पुस्तक की आवश्यकता नहीं रह जाती।

वेद का अर्थ अनादि सत्यों का समूह है।

आर्यों की प्रत्येक विद्या का बीज वेद में विद्यमान है।

वेदान्त सब धर्मों का बौद्धिक सार है।

वेदान्त जगत् को उड़ा नहीं देता, उसकी व्याख्या करता है।

वेदान्त में वैराग्य का अर्थ है—जगत् को ब्रह्मरूप देखना।

वेदान्त का प्रतिपाद्य है 'विश्व का एकत्व' केवल विश्व बन्धुत्व नहीं।

उपनिषद् ज्ञान-समुद्र है। संसार में उनकी तरह अपूर्व काव्य और नहीं है।

उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ मुझे शक्ति का सन्देश देता है। गीता के समान वेदों का भाष्य न कभी बना है, न बनेगा।

गीता एक सुन्दर पुष्पमाला का चुने हुए सर्वोत्तम फुलों के एक गुलदस्ते के समान है।

महाभारत भारतीय इतिहास का अमूल्य ग्रन्थ है।

सर्वश्रेष्ठ महापुरुष शान्त, अमुखर और अज्ञात होते हैं।

हर एक महापुरुष का जीवन ही उसके उपदेशों का एकमात्र भाष्य है।

आज भी यह घोर भोग-लिप्सापूर्ण संसार ऐसे महात्माओं से बिल्कुल शून्य हो गया है।

राम, कृष्ण, बुद्ध, चैतन्य, नानक, कबीर आदि सच्चे अवतार हैं।

कृष्ण के प्राचीन संदेश में हमें दो विचार सर्वोपरि मिलते हैं, पहला है विभिन्न विचारों का सामंजस्य और दूसरा है अनासक्ति।

बुद्ध समता के महान् उपदेष्टा थे।

श्रीरामकृष्ण परमहंस का अध्ययन किये बिना वेद-वेदान्त, भागवत् और अन्य पुराणों का महत्व समझना असम्भव है।

प्रत्येक व्यक्ति के उच्चतम आदर्श को ही ईश्वर कहते हैं।

ईश्वर, प्रकृति, आत्मा, विश्व—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं।

ईश्वर जगत के बाहर नहीं, वरन् उसके अन्दर ही है।

केवल परमेश्वर शाश्वत है और बाकी सब कुछ नश्वर है।

दिन-रात ईश्वर का चिन्तन करो; जहाँ तक हो सके दूसरे विषयों का चिन्तन छोड़ दो।

सर्वदा ॐकार का जप ही यथार्थ उपासना है। किसी की निन्दा मत करो। यदि दुःख-विपत्ति आये तो समझो ईश्वर तुम्हारे साथ खेल कर रहे हैं और यही समझकर दुःख में भी परम सुखी रहो।

हृदय की पवित्रता से ही ईश्वर का दर्शन होगा।

संसार में जब आया है तो एक स्मृति छोड़कर जा, वरना पेड़-पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

जीवन की समस्त लयों के अनुकूल

पीयरलेस

दि पीयरलेस जेनरल फाइनैन्स एण्ड
इन्वेस्टमेन्ट कं० लिमिटेड
पीयरलेस भवन
३, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता—७०००६९

भारत की वृहत्तम नॉन-बैंकिंग बचत कम्पनी

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८३

विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्दजी की बहुप्रतीक्षित बृहत् जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में

स्वामी गम्भीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की यह मूल बंगला जीवनी
उनका अत्यन्त प्रामाणिक और अन्तर्दृष्टिसम्पन्न
जीवन-चरित मानी जाती है। सर्वदूर समादृत यह ग्रन्थ अब
हिन्दी-भाषी पाठकों को उपलब्ध हुआ है। हिन्दी में
स्वामी विवेकानन्दजी के बृहत्, प्रमाणभूत जीवनी का
अभाव था, जिसकी पूर्ति इस प्रकाशन से अब
हो गई है।

हर खण्ड करीब डमाई ४०० पृष्ठों का है।

हर खण्ड का मूल्य रु. ५०/- *तीन खण्डों का एकत्रित मूल्य रु. १२०/-*

प्रकाशक :

रामकृष्ण मठ

(प्रकाशन विभाग), धन्तोली, नागपुर-४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सईदपुर, पटना-४ में मुद्रित।